विषय-सूची ।

	विषय	पृष्ठ
१	हमारी आत्मोन्नति	१
२	नव पदार्थ ओलखनाकी जोड़	१४
३	जीव पदार्थ की ढाल	१५
४	अजीव पदार्थ की ढाल	३१
५	पुन्य पदार्थ की ढाल	४४
६	पुन्य की करणी ओलखणा की ढाल	६०
७	पाप पदार्थ की ढाल	७७
८	आस्रव पदार्थ की ढाल	९३
९	,, की दूसरी ढाल	१०७
१०	संवर पदार्थ की ढाल	१२१
११	निर्जरा पदार्थ की ढाल	१३६
१२	निर्जरा की करणी की ढाल	१५२
१३	बंध पदार्थ की ढाल	१६८
१४	मोक्ष पदार्थ की ढाल	१७६
१५	नवों ही पदार्थों का खुलासा की ढाल	१८८

ॐ श्रीवीतरागायनमः ॐ

हमारी आत्मोन्नति।

धार्मिक भव्य हलुकर्मी जीवों को विचारना चाहिए कि हमारी आत्मोन्नति कब और कैसे होगी ? क्या मनमानी लोकप्रिय मीठी २ बातें करने से ? या पय मिश्री समान मिष्ट वचन सुनने से ? या मनोहर मनोहर रूप देखने से ? या अतिश्रेष्ठ सुगंध सूंघने से ? या अमृत समान भोजन करने से ? या मन इच्छित वस्त्राभर्ण स्त्रियादि के स्पर्श करने से ? किन्तु नहीं नहीं कदापि नहीं। उपरोक्त विषय सेने सेवाने और अनुमोदने से आत्मोन्नति किञ्चित् भी नहीं हो सकती है। हो सकती है सिर्फ धर्म करने से। वह धर्म क्या और किस तरह किया जाता है, इसकी पहिचान करना अत्यावश्यक है।

इस अपार असार संसार में अनेक तरह के धर्म और अनेक तरह के धर्मावलम्बी हैं, कोई कहते हैं पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि, और आकाश, इन पांच तत्वमयी सर्व वस्तु हैं आत्मा कोई वस्तु है ही नहीं। न स्वर्ग है न नर्क है और न कोई पुन्य पाप है। कोई कहते हैं नहीं नहीं पञ्चतत्वमयी शरीर है इस में अन्तरगत आत्मा अलग है सो सदा अकर्ता अभोक्ता है, कोई कहता है इस सृष्टी को परमेश्वर ने बनाई है सुख दुःखदायक परमेश्वर ही है जैसी ईश्वर की इच्छा हो वैसा ही प्राणियों को करना होता है समस्त कार्य के करता हरता परमेश्वर ही है, कोई कहते हैं नहीं नहीं करता कराता परमेश्वर कुछ भी नहीं जैसा जैसा कर्म जीवात्मा करता कराता है उसका फल जीवात्मा को परमेश्वर देता है चौरासी लक्ष जीवा योनी में परमेश्वर ही शुभाशुभ कर्मानुसार भ्रमण कराता है, कोई कहते हैं उपरोक्त बातें सब झूंठ हैं, ईश्वर कुछ करता कराता नहीं वह तो अकर्ता अभोक्ता अछेदी अभेदी अजोगी अरोगी असोगी अरूपी अजर अमर अचल अटल परमानन्द ज्योतिस्वरूप

निरञ्जन निराकार है, संसारी जीव भावी वश जैसा कर्म करता है वैसा ही भोगता है, वे कर्म दो प्रकार के हैं शुभ और अशुभ, शुभकर्म को पुन्य कहते हैं और अशुभकर्म को पाप, जीवों को साता उपजाने से याने आहार पानी वस्त्र आभरणादि देने से पुन्य होता है और दुःख देने से पाप होता है पुन्य से आत्मा की उन्नति और पाप से अवनति होती है, इत्यादि अनेक तरह के मज़हब और अनेक तरह के धर्म हैं, लेकिन अपनी आत्मोन्नति का उपाय तो कोई विरले ही जानते हैं जो जीव मोहमयी महा घोर निद्रा से निद्रित हैं वे अपनी आत्मोन्नति हरगिज भी नहीं कर सकते हैं इसी लिये सद्गुरुओं का कहना है हे भव्यजनों! "जागो, जागो" बहुत दिन मास व्यतीत हुए अनेक दिनों से दिवाकर भ्रमण कर दिवसों को दिखाए, अपार निशाओं में निशाकर सुधामयी चन्द्रिका फैलाई, अनेक तारागणों ने प्रकाश किया, आस पास की नहीं मह्ल्ले शहर की नहीं बहुत कोसों तक आवाज सुनाने वाली नौबतें नहीं अनन्त मेघगर्जन सुन के अरास्वार कायरों को दिलदुलाने वाली तोपों की आवाज सुन के भी तुम्हारी निद्रा नहीं गई? श्री आचारांगसूत्र में कहा है, (सुत्तं तेणं गयं धनं) याने सोया धन खोया, अमूल्य धन पास रखके ऐसी निद्रा में गाफिल होना भला क्या समझदारी का काम है?

प्रियवरो! एकाग्र चित्त करके सोचो यह निद्रा हमेशा मामूली आती है सोही है या और कोई दूसरी है? अगर मामूली होती तो इतने शब्द सुन के हरगिज भी नहीं ठहर सकती, लेकिन इस मोह मिथ्यात्वमयी निद्राने तो एकक्षणमात्र भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ा है, ज्ञान के नेत्रों से देखो इस निद्रा ने तुम्हारा क्या २ गुण छिपाया है, इससे तुम्हारा कितना नुकसान हो रहा है, अमूल्यरत्नागर होके ऐसे गाफिल होना भला क्या समझदारी का काम है? तुम कौन हो और अब कैसे हो रहे हो, तुम हो साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप निरञ्जन निराकार परब्रह्म परमात्मा सुखों के भोगने वाले, अनन्त ज्ञान दर्शन चारित्र

वीर्य तुम्हारे गुण तुम्हारे ही पास हैं; लेकिन इस मोह मिथ्यात्वमयी निद्रा से निद्रित होके अनन्त चतुष्टय गुणों को दबा दिया है। देखो तुमने उस अपूर्व अलौकिक शक्ति को अति निर्बल करा दी है, उस असीम शक्ति के सामने सूर्य चंद्र जल वायु आदि की अमोघ शक्तियां भी सिर उठा नहीं सकती, ऐसे निर्मल अनन्त शक्तिवन्त हो के शक्तिहीन होना भला कहां तक अच्छा है?

महानुभावो! निष्पक्ष होके विचार करो यह अवगुण एकान्त तुम्हारा ही नहीं है, यह अपलांछन तुम को ही कुशोभित नहीं किया है, इस गफलतने तुम्हारे ही को निर्धन नहीं किया है, इस अविद्याने तुम्हें ही मूर्ख शिरोमणि पदारूढ नहीं किया है, तुम्हारे संगी साथी, तुम्हारे मित्र अमित्र, नाती गोती, बहुत से ऐसे ही हो रहे हैं। इस का मुख्य कारण यह है कि अनादि काल से ही तुम और तुम्हारे संगीसाथी कुगुरु भ्रष्टाचारियों का ही संग कर रहे हो, जिससे ही जीव अधिकांश मोह मिथ्यात्वमयी निद्रा से निद्रित हो रहा है। वो कुगुरु हीनाचारी स्वयं शुद्ध सीधा साधुपंथ पर नहीं चलते और दूसरे को भी नहीं चला सकते हैं, वो यह लौकिक पूजाश्लाघार्थी जीव पंचेन्द्रियों के विषय भोग गर्भित देशना दिये बगैर नहीं रहे, वो भेषधारी दया दया मुख पुकार कर हिंसा का प्रचार करते हैं। कहैं किसे सुनता है कौन? बतावे किसे देखता है कौन, चारों तरफ मिथ्यामयी महाघोरांधकार छा रहा है, पापकर्म रूपी महाकाली विकराली घटाओं से शुद्धस्वरूप सूर्य छिपा हुआ है। लेकिन ज्ञान चक्षु से देखो, सुमति से खयाल करो, वह शुद्ध स्वरूप सूर्य छिप कर के भी नहीं छिपा है, सुमति से खयाल करो वह तुम्हारी निर्मल अमित कान्ति मलीन हो के भी विकृत नहीं हुई है, वह तुम्हारा बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम कहीं नहीं गया है, सब तुम्हारे पास है, अगर तुम्हें अपने गुण प्रकट करने हैं और अपनी आत्मोन्नति करनी है तो शुद्धसाधु महात्माओं की संगति करो, तथा रागद्वेष रहित वीतराग प्रभु के वचनों के अनुसार चलो, हिंसा मतकरो, संयमी होवो,

झूंठ मत बोलो, चोरी मत करो, ब्रह्मव्रत धारण करके निर्लोभी निष्परिग्रही हो, बस यही राह सीधी मुक्ति मिलने की है, बाकी सब ढोंग है, जहांपर पैसे और स्त्री का प्रचार है वहां कुछ आत्मोन्नति का उपाय नहीं है। हे मित्र ! मत भ्रमो। संसार से मिलती झूंठी प्ररूपना करने से पंचइन्द्रियों के विषय सेने सेवाने से और दूसरे जीवों का शारीरिक सुख इच्छने से मोक्षाभिलाषी कभी नहीं हो सकते, संसार में संसारी जीवों को खाना खिलाने से आत्मकल्याण नहीं होता। पृथ्वी पानी वायु अग्नि वनस्पति के जीवों को मार कर त्रस जीवों को साता उपजाने से धर्म कदापि नहीं होता है। इस ध्वंस शील शरीर का मोह छोड़ कर तप अङ्गीकार करो, शरीरस्थ महा पुरुष के साथ जगदात्मा के जिस नित्य सम्बन्ध को भूलकर माया के इन्द्रजाल में फंसा हुवा है, और सङ्कल्प विकल्प के अनर्थ में लहा लोट होता है उस सम्बन्ध को शुभज्ञान से प्रत्यक्ष कर उसी ज्ञान में लवलीन रहो। विचार करो हम सच्चिदानन्द आनन्दस्वरूप शुद्ध स्वरूप अजर अमर हैं, और यह शरीर अनित्य है, शरीर अलग है और हम अलग हैं' इस पुद्गलमयी शरीर का और हमारा संग अनादि काल से चला आता है, इस की रक्षा करने से ही हम इस से अलग हो के सिद्धात्मा नहीं बनते, इस कुटुम्ब और सुखी जीवों के मोहजाल में फँसकर ही मोह अनुकम्पा करने से चतुरगति संसारमयी समुद्र में गोता लगा रहे हैं। प्यारे ! तुम दुखियों को देखकर दुखी और सुखियों को देखकर सुखी क्यों होते हो, भैय्या तुम्हारे सामने तुम्हारा पिता, तुम्हारी माता, तुम्हारी स्त्री, तुम्हारे पुत्र, पौत्र, तुम्हारे नाती, गोती, तुम्हारे मित्र, अमित्र, सब चले चलते हैं, और चले जांयगे, इन किसी का मोह मत करो, निर्मोही हो के श्री वीतराग प्ररूपित धर्मानुसार प्रवर्तो, तब दुःखों से छुटकारा पाओगे। सर्व मतों में सब ग्रन्थों में सब शास्त्रों में अहिंसा धर्म ही मुख्य है। हिंसा करना, झूंठ बोलना, चोरी करना, मैथुन सेना, और परिग्रह रखना सर्वथा वर्जित है तो जैन मत में तो उपरोक्त पञ्च आस्रवद्वार

सेना सेवाना और अनुमोदना मन वचन काया करके सर्वांश निषेध है। इसलिए सद्गुरों का कहना है, देवानुप्रियो! जागो २, अनादि काल से सोते सोते निजगुणों को भूल गये क्या अब सोते ही रहोगे? आलस्य छोड़ो, प्रमाद तजो, पाप हरो, जियादह नहीं तो बन सके उतना ही धर्म करो, लेकिन जिन आज्ञा बाहर के कार्य्य में धर्म कदापि मत समझो। श्रधा शुद्ध रखने से ही सम्यक्त्वी कहलाओगे, परन्तु आज्ञा बाहर का कार्य्य में धर्म समझने से सम्यक्त्वी कभी नहीं कहलाओगे। जैनी नाम कहा के एकेन्द्री जीवों के मारने में धर्म ऐसा कहना भला कहां तक अच्छा होगा? धर्मार्थ हिंसा का दोष नहीं ऐसी प्ररूपना करके अहिंसा धर्म जो तीर्थङ्करों का कहा हुआ है उसे कलङ्कित मत करो, महानुभावो, देखो देव गुरु धर्म यह तीनों अमूल्य रत्न हैं, इनकी पहिचान करो, अगर अपने बुजुर्ग कुसंग से कुगुरुउपासक थे तो तुम उनकी देखा देख कुगुरुओं हिंसाधर्मियों की उपाशना मत करो, तब तुम्हारी आत्मोन्नति होगी। परभव में दुर्गति न पाव अगर ऐसा विचार है तो असली नकली की पहिचान जरूर करो, ऊपर की चमक दमक ही देखकर मत भ्रमो, सिर्फ कांटा बांट बांधकर जोंहरी नाम कहलाने से ही जोंहरी नहीं हो सकता, वैसे ही जैनी नाम धराने से ही जैनी नहीं हो सकता है। दृढ़ता रक्खो बाह्य शुची से पवित्रात्मा कभी नहीं होगी, जो यह अपनी आत्मा अनादि काल से हिंसा आदि पञ्च आस्रव द्वार सेने सेवाने और भला जानने से मलीन हो रही है वो आत्मा इन्हीं पञ्च आस्रव द्वार सेने सेवाने और भला जानने से कभी भी निर्मल नहीं होगी। इसी लिये कहना है प्रियवरो! शुद्ध पञ्च महाव्रत पालने वाले मुनिराजों को मलीन कहकर पापों के पुञ्ज से आत्मा भारी मत करो और जिन भाषित नय निक्षेप का भावार्थ यथार्थ समझो, निश्चय और व्यवहार दोनों नयों से मात्र पदार्थों का द्रव्य गुण पर्याय को यथार्थ समझो। एकान्त निश्चय या एकान्त व्यवहार नय को ही मत ताणो। एक पक्षी बने रहोगे तो समकित का लाभ नहीं पाओगे,

याद रक्खो श्री वीतराग देव प्ररुपित धर्म स्याद्वादमयी है. परन्तु एकान्तवाद नहीं है, एकान्त निश्चय नयी हो के व्यवहार नय को मत उथापो छद्मस्थ का तो व्यवहार हो शुद्ध है. इसलिए कहना है कि कुहेतु दे के जिन भाषित अहिंसा धर्म को विध्वंस मत करो। अगर सच्चे जैनी हो तो अहिंसा धर्म प्ररुपते हुए क्यों लाजते हो और पृथिवी आदि पांच स्थावर की हिंसा में धर्म क्यों प्ररुपते हो, देखो द्वितीय सूत्र कृतांग के प्रथम श्रुत स्कंध के प्रथम अध्ययन के दूसरे उद्देशे इग्यारवी गाथा में कहा है :—

धम्म पन्नवणां जासा, तंतु संकोति मूढगा।
आरम्भानि न संकंति, अविअत्ता अकोविआ॥

टीका—शङ्कनीया शङ्कनीय विपर्यासमाह (धम्म पन्नवणोत्यादि) धर्मस्य क्षांत्यादि दशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञापना प्ररूपणा (तंत्विति) तामेव शङ्कन्ते असद्धर्म प्ररुपणीयमित्येव मध्यवस्यंति ये पुनः पापोपादान भूताः समारंभास्तान् शंकते (किमिति) यतोऽव्यक्ता मुग्धा सद्सद्विवेकविकलाः तथा अकोविदा, अपण्डिताः सच्छास्त्रावबोधरहिता॥

अर्थात् क्षान्त्यादि दशविधि धर्म प्ररुपणा है उसे प्ररुपते तो शंकाय पाने शरमाते हैं और आरम्भ में धर्म प्ररुपते शङ्काय नहीं, ऐसे अव्यक्त मुग्ध अपण्डित हैं, इसीलिए कहना है, हे देवानुप्रियो! जो श्री अरिहन्त भगवन्तों ने अहिंसा धर्म कहा है सोही कहना उचित है अन्यथा सर्वान्दा वर्जनीय है श्री सूयगडांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के प्रथमाध्येन में खुलासा कहा है।

तत्थ खलु भगवन्ता छज्जीवनिकाय हे उपन्नता तंजहा पुढवीकाए जाव तसकाए से जहा णामए मम असायं दंडेणवा अट्ठीणवा मुट्ठीणवा लेलूणवा कवालेणवा आउट्टिज्ज माणस्सवा हम्ममाणस्सवा तज्जिज्जमा

माणस्सअं ताडिज्झ मोणस्स वा परियाविज्झमाणस्सवा किलाविज्झमाणस्सवा उद्दविज्झमाणस्सवा जावलो मुख्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुख्खं भयं पडिसं वेदेमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा सव्वे भूता सव्वे पाणा सव्वे सत्ता दंडेणवा जाव कवालेणवा आ उद्दिज्झमाणावा हम्ममाणावा तज्झिज्झमाणावा ताडिज्झमाणावा परियाविज्झमाणावा किलाविज्झमाणावा उद्दविज्झमाणावा जावलोमुख्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुख्खं भयं पडिसंवेदेंति एमं नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा णअज्झावेयव्वा णपरिघेतव्वा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा । सेवेमि जेयअतिता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सामि अरिहन्ता भगवन्ता सव्वे ते एवमाइख्खंति एवंभासंति एवंपणवेंति एवंप्ररूवेंति सव्वे पाणा जावसवेसत्ता णहंतव्वा णअज्झावेयव्वा णपरिघेतव्वा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा एसधम्मे धुवे णीतीए सासए समिच्च लोगं खेयन्ने हिं वदेंति एवंसे भिख्खू विरते पाणातिवायतो जाव विरते परिग्गहातो णोदंतपख्खालणेणं दंतपख्खालेज्जा णोअंजणं णोवमणं णोधूवणे णोतं परिआविएज्झा ॥

अर्थ—(तत्थ के०) त्यां कर्मबंधने प्रस्तावे खलु इति वाक्यालंकारे (भगवंता के०) भगवंत श्रीतीर्थंकरदेवे (छज्जीवीनकाय हेउ के०) छजीवनीकाय कर्मबंधना कारण (पणत्ता के०) कह्या छे ॥ (तंजहा

के०) ते छकायना नाम कहे छे(पुढवीकाय जावतसकाए के०) पृथ्वी-काय थी मांडीने यावत् त्रसकाय पर्यंत् छजीवनिकाय जाणवा तेहने पीडतां पीडावतां जेम दुःख उपजे तेम दृष्टांते करी देखाडेछे (सेजहा-णामए के०) ते जेमनाम एवी संभावनार्थे (मम के०) मुझने (अस्सायं के०) असाता उपजे शा थकी असाता उपजे ते कहे छे (दंडेणवा के०) दंडादिकेकरी हणतांथका (अट्ठीणवा के०) अस्थिखंडे करी हाडकायें करी (मुट्ठीणवा के०) मुष्टीयें करी (लेलूणवा के०) पाषाणे करी (कवा-लेणवा के०) ठीकरीयें करी (आउट्टिज्झमाणस्सवा के०) आक्रोश करतां थकां तथा सन्मुख नाखतां थकां (हम्ममाणस्सवा के०) अथवा हणाता थकां (तज्जिज्झमाणस्सवा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्झमाणस्सवा के०) ताडना करता थका (परियाविज्झमाण-स्सवा के०) परितापना करतां थका (किलाविज्झमाणस्सवा के०) किलामणा करता थका (उद्दविज्झमाणस्सवा के०) उद्वेग करता थका तथा जीवने कायाथकी रहित करता थका (जावलोमुक्खणण-माय मवि के०) यावत् शरीर मोहथो एक रोमउखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसा कारगं के०) हिंसानु कारण तेथी पण (दुःक्खं भयं पडिस वेदेंमि के०) दुःख अनेभय हुं वेदूं अनुभवूं (इच्चेवंजाण के०) एमप्रकारे तें जाणे के (सव्वेजीवा के०) सर्व जोवते सर्व पंचेंद्रिय जीव जाणवा (सव्वेभूता के०) सर्व भूतते सर्व वनस्पति प्रमुखना जीव जाणवा (सव्वे पाणा के०) सर्व प्राणी ते सर्व बेइन्द्रियादिक विकलेन्द्री जीव जाणवा (सव्वेसत्ता के०) सर्वसत्व ते पृथिव्यादिक सर्व जीव जाणवा तें जीवोने (दंडेकरी हणता थका (जावकवालेणवा के०) यावत् ठीकरीयें करी हणता थका (आउट्टिज्झमाणवा के०) आक्रोश करता थका (हम्ममाणावा के०) हणता थका (तज्जिज्झमाणावा) तर्जना करता थका (तडिज्झमाणावा के ०) ताडना करता थका (परिया-विज्झमाणावा के०) परितापना करता थका (किलाविज्झमाणवा के०) किलामणा करता थका) उद्दविज्झमाणावा के) उद्वेग करता

थका तथा जीव ने काया थकी रहित करता थका (जावलोमुक्खणण-माय मवि के०) यावत एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकार के०) हिंसानुं कारण ते थकी पण (दुःक्खं भयं पडिसंवेदेति के०) ते जीवो दुःख अने भय एवुंज वेदे अनुभवे एटले जेवुं दुःख मने वेदवुं पडे तेवुं दुःख सर्व जीवने वेदवुं पडे एम सर्व जीवोने पोता सरखुं दुःख देखाडी ने अन्य जीवोने शिक्षानो उपदेश आपेछे (एवं नच्चा के०) एवुं जाणो ने (सव्वेपाणा जावसत्ता के०) सर्व प्राणी सर्वभूत सर्व-जीव अने सर्व सत्वने (णहंतव्वा के०) हणवा नहीं (णअज्झावेयव्वा के०) दंडादिके करी ताड़वा नहीं (णपरियेतव्वा के०) बलात्कारे करी दासनी पेठें परिग्रहवा नहीं एटले बलात्कारे करी चाकरनी पेठें कोई कार्यने विषे प्रेरवा नहीं (णपरितावेयव्वा के०) शारीरिक मानसीक पीडाने उपजावीने परितापवा नही (किलविद्यामाणवा णउद्दवेयव्वा के०) किलामणा करी करी उपद्रववा नहीं तथा काया थकी रहित करवा नहीं ॥ ४८ ॥ हिवे सुधर्म स्वामी कहेछे (सेवेमि के०) ए वचन जे हुं कहुं छुं ते पोतानी मतिये नथी कहतो पण एम सर्व तीर्थंकरनी आज्ञाछे ते देखाडेछे (जेयअतीता के०) जे अतीतकाले तीर्थंकर थया (जेयपडुप्पन्ना के०) जे वर्तमानकाले तीर्थंकर वर्तेछे (जेयआगमि-स्सामि के०) जे आगमिक काले थाशे ते (अरिहंत के०) अरिहन्त सत्कार योग्य (भगवंता के०) ज्ञानवंत आश्चर्यादि गुणे करी संयुक्त एहवा (सव्वेते के०) समस्त श्री अरिहन्त भगवंत ते (एवमाइक्खंती के०) एम सामान्य थकी कहेछे (एवं भासंती के०) एम आर्यमाग-धीभाषायें भाषे छे (एवंपणवेंति के०) एम शिष्यने देशना आपेछे (एवंपरूवेंति के०) एम सम्यक प्रकारे प्ररूपेछे के (सव्वेपाणाजाव-सत्ता के०) सर्वे प्राणोथी मांडीने यावत् सर्व सत्वने (णहंतव्वा के०) हणवा नहीं दंडादिके करी ताड़वा नहीं वली बलात्कारे दासनी पेठें परिग्रहवा नहीं शारीरिक मानसीक पीड़ा उत्पन्न करीने परितापवा नहीं उपद्रववा नहीं जीव काया रहित करवा नही (एसधम्मे धुवे के०) ए

धर्म प्राणीनी दया लक्षण दुर्गतियें जाता जीवने राखनार ते धर्म केवोछे तोके ध्रुव एटले निश्चल (णोतिये के०) नित्य सदा सर्वकाल छे कोई काले जेनों क्षय नथी (सासये के०) शाश्वत छे तेने (समिच्च के०) केवल ज्ञाने करी आलोचीने शुं आलोचीने तो के (लोगं के०) चौद रज्वात्मक लोक एटले षट् जीवनिकायरूप लोक तेहने दुःखरूप समुद्रमांहे पड्यो देखीने (खेयन्ने हि के०) खेदज्ञ एटले बीजा जीवोनां दुःखोना जाणनार एवा श्री तीर्थंकर भगवंते (पवेदेंति के०) पूर्वोक्त जीव दया लक्षण धर्म भाख्यो (एवं के०) ए प्रकारे जाणीने (सेभिक्खु- विरते के०) ते साधु निवर्त्यो (प्राणातिवायतो के०) प्राणातिपात एटले हिंसा थकी तेमज मृषावाद थकी तथा अदत्तादान थकी तथा मैथुन एटले कुशील थकी (जावविरतेपरिग्गाहातो के०) यावत् परिग्रह थकी विरति करती थको जेवा आचारे प्रवर्ते ते आचार कहेछे (णोदन्तपरकालणेणंदंतपरकालेमका के०) दंत पक्षालने करी दन्त धोवे नहीं एतावता जावजीव सुद्धि दांतण न करे (णोअंजणं के०) जावजीव सुधी सौभाग्य ने अर्थे आंखमां अंजन नाखे नहीं (णोवमनं के०) वमन विरेचनादिक क्रिया न करे (णोधूवणे के०) शरीर वस्त्रादिकनूं धूपन न करे (णोतंपरियाविपमका के०) कासादि रोगने मटाडवा माटे धूमपान पण न करे ते भिक्षु एटला वाना पोते आचरे नहीं ॥ ४६ ॥

अर्थात् सर्व प्राणी भूत जीव सत्त्वों को न मारना यह अहिंसा धर्म ध्रुव नित्य और शाश्वता है अतीत काल में जो अरिहन्त भगवन्त हुए वर्तमान में जो महाविदेह क्षेत्र में हैं और अनागत काल में जो अरिहन्त होविंगे उन्होंने यही कहा यावत् यही प्ररूपा तथा यही कहेंगे यावत् यही प्ररूपेंगे, तो अब मोक्षाभिलाषियों को विचारणा चाहिए कि किसी प्रकार भी जीव हिंसा में धर्म नहीं हो सकता है। तब कोई कहे धर्म के वास्ते हिंसा करनेसे दोष नहीं होता है, ऐसे कहे उन्होंको विचारणा चाहिए कि तीर्थंकरों ने धर्म ही अहिंसा में कहा है तो फिर

हिंसा में धर्म कैसे होगा ? लेकिन कुयुक्ति लगाके अनार्य लोग धर्म हेतु जीव मारने में दोष नहीं ऐसी प्ररूपना करते हैं यह श्री आचारांग सूत्र में खुलासा कहा है, तथा अर्थ वा धर्म के लिए पृथ्वीकायादि जीवों को मारते हैं उन्हें मन्द बुद्धि दशमां अंग प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है।

इसलिए दया धर्म की प्ररूपना करने वाले सतगुरुओं का कहना है, देवानुप्रियो ! जागो जागो जागकर के दया में धर्म हिंसा में पाप जिन आज्ञा में धर्म आज्ञाबाहर पाप समझो और जीव अजीव आदि नव पदार्थों की ओलखना करो तब जैनी होके संसार प्रत: करोगे केवल नाममात्र जैनी कहलाने से कुछ भी आत्मोन्नति नहीं होगी, "होगी शुद्ध सरधने से " ज्ञान बिना क्रिया कष्ट करने से सर्वथा आराधक कभी नहीं होवोगे "सूत्र में कहा है" (पढमनाण तवो दया) अर्थात् प्रथम ज्ञान और पीछे दया, तथा जो ज्ञान विना करणी व तपस्या करके मुनिराज कहलाते हैं परन्तु उन्हें मुनि नहीं समझना चाहिए क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है "नाणेणय मुणी होई" अर्थात् ज्ञानवंत होने से मुनि होते हैं ज्ञान विना नाम मात्र मुनिराज होते हैं भाव मुनि तो जब हीं होंगे तब नव तत्वों का जाण होके सावद्य कार्य की आज्ञा नहीं देंगे और षट द्रव्य की गुण पर्याय को यथार्थ समझेंगे श्री उत्तराध्ययन के मोक्ष मार्ग अध्ययन में कहा है।

एयं पंच विहणाणं दव्वाणय गुणाणय ।
पज्जवाण सव्वेसिं नाणं नाणी हि दंसियं ।१।

अर्थात् वस्तुसत्ता जाणे विना ज्ञानी नहीं तथा नवतत्वों को ओलखे वह समकिती है ज्ञान विना चारित्र कभी नहीं हो सकता है उत्तराध्ययन में ऐसाही कहा है "नाणेण विना न हुंति चरण गुणा" अर्थात् ज्ञान विना चारित्र के गुण नहीं, जीव अजीवादि का ज्ञान होके

संयम पचक्खेंगे तब भाव निक्षेपे मुनिराज होंगे श्री अनुयोगद्वार सूत्र में कहा है।

इमे समण गुणमुक्कयोगी छक्काय निरणु कंपा हया इव उद्दामा गया इव निरंकुसा घट्ठा मट्ठातु प्पोट्ठा पंडुरया उणाण जिणाणं प्रणा एस छंदा विहरि ऊणाउ भउकालं आवस्स गस्स उवट्ठं तितं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं।

अर्थात् साधु के गुणो रहित छओ कायों की दया नहीं करने वाले हय याने घोड़े की तरह उन्मद्द और निरांकुश हाथी वत् श्री वीतराग की आज्ञा को भंग करने वाले स्वेच्छाचारी तथा स्नान करके शरीर को निर्मल रखके स्वच्छवस्त्रादि से श्रृङ्गार करने वाले केशो को संवार कें शरीर की शोभा वढ़ाने वाले कालोकाल प्रतिक्रमणादि नहीं करते हैं इत्यादि अनेक अवगुणों सहित द्रव्य साधु है, प्रियवरो! तव ही तो स्वामी भीखनजी ने द्रव्य साधु भेपधारियों का संग छोड़ कर अपनी आत्मा का उद्धार किया है और सुगुरु कुगुरु पहिचानने के निमित्त अनेक ढालें चोपाइयां बनाकर भव्यजीवों को समझाने के लिए उपदेश दिया है सो निर्गुणी भेष धारियों को अत्यन्त अप्रिय लगे हैं तव वो अनेक तरह से उनकी निन्दा करके लोगों को वहकाते हैं कहते हैं भीखनजीने तो भगवान को तो चूके गुरुको रोये वताये हैं और दया मे पाप वताते हैं तथा दान धर्म को तो उठा ही दिया है इत्यादि मनमानी कथनी कथके भोले लोकों को श्री वीतराग प्ररूपित धर्म मार्ग से विमुख कर रहे हैं लेकिन न्यायाश्रयी तो हरगिज भी नहीं मानते, मोक्षाभिलाषी तो समझते हैं निन्दकों का कर्तव्य तो निन्दा करना ही है, निन्दकों की निन्दा से गुणी के गुण कभी भी लुप्त नहीं होते हैं, इसीलिए निन्दक जी चाहे सो निन्दा करो परन्तु गुणी पुरुष तो गुणी

ही रहेंगे, और निन्दा करने वाले निन्दक ही रहेंगे, यह किसी को अ-प्रिय लगे तो क्षमाता हूं परन्तु न्याय वार्ते तो निःशंक से ही कहना उचित है स्वामीने तो स्वकृत ढालों में किसी का भी नाम ले के अप-शव्द नहीं कहा है परन्तु हीणाचारी द्रव्यलिङ्गियों ने अनेकानेक पुस्तकें छपाके स्वामीजी की निन्दा ऐसे ऐसे शव्दो में की है कि जैसे कोई मदिरा के नशे में चूर होके नेक आदमी को गाली गलोज देते हैं, किन्तु भले आदमी को तो हलका शव्द भी मुखसे उच्चारण करते शरम आती है जो जातिवन्त कुलवन्त और लज्जावन्त होगा वो तो किसी का नाम लेके हर्गिज भी अपशव्द नहीं निकालेगा परन्तु अधम जाति-वाला केवल पेटार्थी गुणशून्य मानव शुद्ध साधु मुनिराजों से द्वेष करके अनेक मृषा आल देते नहीं लाजेंगे जिनकी आदत निन्दा करने की है उन्हें निन्दा किये विना जक नहीं पड़ती नीति शास्त्रों में कहा है—

नचना परवादेन रमते दुर्जनो जनः।
काक सर्वरसान् भुक्ता विना मेध्यं न तृप्यति ॥

अर्थात् कागला अनेक रस खाता है परन्तु भ्रष्टा में मुख दिये विना तृप्त नहीं होता है वैसे ही निंदक निन्दा किये विना खुश नहीं होता। इसलिए हमारा कहना है हे प्रियवरो! मत पक्ष को तज के सत्यासत्य का निर्णय करो यह मनुष्य जन्म स्यात् स्यात् नहीं मिलने का है, महानुभावों! आप लोगों से प्रार्थना है कि द्वेषभाव को छोड़कर जिनआज्ञा धर्म धारण करो तव कुगति से वचोगे और अपनी आत्मोन्नति होगी—

आपका हितेच्छू

श्री० जौहरी गुलावचन्द लूणीयां

॥ नव पदार्थ ओलखना की जोड ॥

दोहा—नमूं वीर शासन धणी, गणधर गौतम स्वाम।
तरण तारण पुरुषां तणो, लीजै नितप्रति नाम १

श्लोक—वीराय शासनेशाय, गौत्तमस्वामिने नमः।
भवाब्धितारकं यस्य, नामस्मरणमञ्जसा ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

तेजीवादि नव पदारथ तणो, निरणो कियो भांत २।
त्यांने हलुकर्मी जीव ओलखै, पूरै मनरी खांत ॥२॥

श्लोक—जीवादिक पदार्थानां नवानां भूरिनिर्णयः।
ज्ञात्वैवं स्वल्पकर्माणः पश्यन्तिहि मनोरथम् ॥२॥

दोहा—जीव अजीव ओलख्यां विना, मिटै न मनरो भ्रम
समकित आयां विन जीवरे, रुकै न आवता कर्म ॥३॥

श्लोक—जीवा न जीवा न ज्ञात्वा मुच्यते न मनो भ्रमः
सम्यक्त्वमन्तरा रोधो जीवानां न भवक्रमात् ॥ ३ ॥

दोहा—नव ही पदारथ जूजुआ, जथा तथ सरधै जीव।
ते निश्चय समदृष्टि जीवड़ा, त्यां दीधी मुक्तनो नींव ॥४॥

श्लोक—पदार्थान् नव संदृश्य, येऽलं श्रद्दधते जनाः।
समदृष्टि गुणास्ते हि, मुक्ति मूलं प्रयुञ्जते ॥४॥

॥ दोहा ॥

हिवै नव ही पदारथ ओलखायवा,जुदा२ कहूं छूं भेद।
पहिला ओलखाऊं जीवने,ते सुणज्यो आण उमेद॥५॥

श्लोक—नवानां हि पदार्थानां, भेदान् वच्मि प्रथक् २।
बोधयाम्यादितो जीव, मेतच्छृणुत सादरम् ५

(भावार्थ)

नमस्कार करता हूं श्री वीरप्रभु शासन के धणी को और साधु साध्वी रूप गण के स्वामी गौतम गणधर को इन तरण तारण पुरुषों का हमेशा नाम जपना चाहिए जिन्होंने जीवादिक नवतत्वों का निणय विधिपूर्वक किया है सो हलुकर्मोजीव ओलख करके मनकी क्षान्ति पूर्ण करें, क्योंकि जीव अजीव को पहिचाने बिना मनकी भ्रान्ति नहीं मिटती है मनका भ्रम दूर हुए बिना सम्यक्त्व नहीं स्पर्शती और समकित के अभाव में आवते हुए कर्म नहीं रुकते हैं, इसोलिये नव-पदार्थों को यथार्थ श्रद्धने से जीव समदृष्टि कहलाता है तब मोक्ष-स्थान की नींव याने बुनियाद को दृढ़ करे हैं इसवास्ते स्वामी भीखन-जो कहते है नव पदार्थ को ओलखाना निमित्त अलग अलग भेद करके कहता हूं प्रथम जीव पदार्थ को ओलखाता हूं सो हे भव्यजनों यह सुनो।

॥ ढाल ॥

॥ डाभमूंजादिकनी डोरी एदेशी ॥

शाश्वतो जीव द्रव्य साक्षात, घटै बधै नहीं तिल मात। तिणरा असंख्याता प्रदेश, घटै बधै नहीं लव-लेश ॥ १ ॥ तिणसूं द्रव्य कह्यो जीव एक, भाव जीव रा भेद अनेक। तिणरो बहुत कह्यो विस्तार, ते

बुद्धिवन्त जाणै विचार ॥ २ ॥ भगवती बीसमां शतक मांय, बीजै उदेशै कह्यो जिनराय । जीवरा तेबीस नाम, गुण निष्पन्न कह्या छै ताम ॥ ३ ॥

(भावार्थ)

जीवको द्रव्य भाव यह दो भेद कर ओलखाते हैं द्रव्य जीव के असंख्यात प्रदेश का समूह है वो सदा सर्वदा त्रिकाल में शाश्वत है उन असंख्यात प्रदेशो में से कभी भी एक अधिक न्यून नहीं होता है उन असंख्याता प्रदेशों की समुदाय करके एकजीव द्रव्य है याने एक जीव के असंख्याता प्रदेश हैं और उन असंख्याता प्रदेशों का एक जीव है ऐसे लोक मे सब जीव अनन्त हैं पृथक पृथक् जीवों के अनेक अनेक भाव हैं सब जीवों की समुदाय करके ही संग्रह नय की अपेक्षाय श्री ठाणा अंग सूत्र में कहा है "एगे जीवा एगे अजीवा एगे पुन्ना एगे पावा" इत्यादि और एक जीवके अनन्त गुण पर्याय है इसवास्ते भाव जीव के अनेक भेद कहे हैं श्रीपञ्चम अङ्ग भगवती के वीसमा शतक के दूसरे उद्देशा में जीवके तेवीस नाम गुण निष्पन्न कहे हैं सो कहते है, तात्पर्य यह है कि जीव द्रव्यतः शाश्वता और भावतः अशाश्वता है, अब भाव जीव के तेवीस नाम कहे सो कहते हैं ।

॥ ढाल तेहिज ॥

जीवे तिण जीवरो नाम, आउपो ने वले जीव ताम । यो तो भाव जीव संसारी, ते बुद्धिवंत लीज्यो विचारी ॥ ४ ॥ जीवत्थी काय ए जीवरो नाम, देह धरै छै तेह भणी आम । परदेशांरो समूह ते काय, पुद्गलरा समूह छै ताय ॥ ५ ॥ श्वास उश्वास लेवे छै ताम, तिणसूं पाणेतिवा जीवरो नाम । भूएतिवा

कह्यो इणन्याय, सदा छै तिहूं काल रे मांय ॥ ६ ॥ सत्तेतिवा कह्यो इणन्याय, शुभाशुभ पोते छै ताय। विणूतिवा विषय को जाण, शब्दादिक लिया सर्व पिछाण ॥७॥ वेयातिवा जीवरो नाम, सुख दुख बेदे छै ठाम ठाम। तेतो चेतन रूप छै जीव, पुद्गलरो स्वादी सदीव ॥ ८ ॥ चेयातिवा जीवरो नाम। पुद्गलरी रचना करै ताम। विविध प्रकारना रचै रूप, ते तो मूडाने भला अनूप ॥ ६ ॥ जेया तिवा नाम श्रीकार, कर्मां रो जीपणहार। तिणरो प्राक्रम शक्ति अनन्त, थोड़ामें करै कर्मांरो अन्त ॥ १० ॥ आया तिवा नाम इणन्याय, सर्वलोक स्पर्शे छै ताय। जन्म मरण किया ठाम ठाम, कठै पाम्यो नहीं आराम ॥ ११ ॥ रंगणे तिवा मोह मद मातो, रागद्वेष में रहे रंगरातो। तिणसूं रहै छै मोहमतवालो, आत्माने लगावै कालो ॥१२॥ हिंडए तिवा जीवरो नाम, चहुं गति में हिंड्यो छै ताम। कर्म हिंडोलै ठाम ठाम, कठै पाम्यो नहीं विसराम ॥ १३ ॥ पोग्गले तिवा जीवरो नाम, पुद्गल ले ले मेल्या ठाम ठाम। पुद्गल में राचरह्यो जीव, तिणसूं लागी संसाररी नींव ॥ १४ ॥ माणवे तिवा जीवरो नाम, नवो नहीं शाश्वतो छै ताम। तिणरी पर्याय तो पलट जाय, द्रव्यतो ज्यूं रो ज्यूं रहसी ताय

॥ १५ ॥ कत्ता तिवा जीवरो नाम, कर्मांरो करता छै ताम । तिणसूं तिणने कह्यो आस्रव, तिणसूं लागै छै पुद्गल द्रव्य ॥१६॥ विकत्ता तिवा नाम इणन्याय कर्मांने विधूणै छै ताय । आ निरजरारी करणी अमाम, जीव उज्वल ते निरजरा ताम ॥१७॥ जए तिवा नाम तणो विचार, कर्म रिपू रो जीपणहार । जव जीवरी जय हो जावै, तव शाश्वता सुख जीव पावै ॥ १८ ॥ जंतूतिवा नाम इणन्याय, एक समय लोकन्ते जाय । एहवो शक्ति स्वभावी जीव, तिणरो कदेह न होय अजीव॥१९॥ सयंभूतिवा छै जीवरो नाम, किण ही निपजायो नहीं ताम । ते तो छै द्रव्य जीव सभावे, ते तो कदे नहीं विललावे ॥२०॥ जोणी तिवा जीवरो नाम, मर मर उपनो ठाम ठाम । चोरासी लख योनीरे मांहि, उपज्यो ने निसर गयो ताहि ॥२१॥ संशरीरी तिवा नाम एह, शरीररै अंतर रहै तेह । शरीर पाछै नाम धरायो, काला गौरादि नाम कहायो ॥२२॥ नाया तिवा कर्मांरो नायक, निज सुख दुःख नो छै दायक । तथा न्याय तणो करणहार, ते तो वोलै छै वचन विचार ॥२३॥ अन्तर अप्पा तिवा जीवरो नाम, सर्व शरीर व्यापी रह्यो ताम । लोलीभूत छै पुद्गल मांहि, निज सरूप दवो-रह्यो ताहि ॥ २४॥ द्रव्य जीव शाश्वतो एक, तिणरा भाव कह्या छै अनेक । भाव तो लक्षण गुण पर्याय, ते तो भाव जीव छै ताय ॥२५ ॥

नं०	मूल पाठ	टीका	भावार्थ
१	जीवेतिवा	जीव	संसारी आयुष्यवंत है तथा सदा जीवता रहता है इसलिए जीव चेतनावंत है।
२	जीवत्थि-कायतिवा	जीवास्ति काय	असंख्यात प्रदेशों का समूह है तथा संसार में शरीर धारण करके काया ऐसा कहलाता है।
३	पाणेतिवा	प्राण	प्राणधारी है इस से प्राणि श्वाशोश्वास लेता है।
४	भूएतिवा	भूत	चतुर्थ नाम भूत याने सदा सर्वदा त्रिकाल जीव का जीव ही है।
५	सत्तेतिवा	सत्व	पांचमू नाम सत्व शुभाशुभ कर्मवन्त है
६	विणूतिवा	विज्ञ	छठ्ठा नाम विन्नू याने विषयी पंच इन्द्रियों की तेवीस विषय का जाण है।
७	वेयातिवा	सुख दुःख वेदक	सुख दुःख का वेदने वाला है इस से सातवां नाम जीव का वेदक है।
८	चेयातिवा	चेयतीति चेता पुद्गलानां चय कारी	पुद्गलों की रचना करता है तथा अच्छा बुरा रूप वर्ण पाता है इससे चेयति आठमा नाम है।
९	जेयातिवा	जेयति जेता कर्म्म रिपूणां	कर्मरूप शत्रुओं की जीत के जय करता है इसलिए नवमा नाम जेता है।

नं०	मूल पाठ	टीका	भावार्थ
१०	आयातिवा	आत्मा नाना गति सतत गामित्वात्	नाना प्रकार की गति करके सर्व लोक को स्पर्शता है इस से दशवां नाम आत्मा है
११	रंगणे तिवा	रङ्गणेति रङ्गणं राग स्तद्योगाद्रङ्गणः	रागद्वेषमयी रङ्ग से रंगा हुआ है इसी लिए इग्यारमा नाम रङ्गणेतिवा है
१२	हिंडएतिवा	हिण्डुएति हिण्डुकत्वेन हिण्डुकः	कर्म मयी हिंडोले में बैठ के च्यार गति में हिंडता है इससे बारमा नाम हिंडुक है
१३	पोग्गलेतिवा	पूरणाद्गलनाच्च शरीरादिना पुद्गलः	पुद्गलों को ग्रहण करना और छोडनादि कार्य करता है तथा पुद्गलों से लिप्त है
१४	माणवेतिवा	मा निषेधे नवः प्रत्यग्रो मानवः अनादित्वात्पुराणः	यह जीव नया नहीं है शाश्वता है इस की पर्याय तो पलटती है परन्तु द्रव्यतः शाश्वता है इससे मानव है
१५	कत्तातिवा	कर्त्ता कारकः कर्मणाम्	कर्मों का कर्त्ता है वही आस्त्रव है इस लिए जीव का नाम करता है

नं०	मूल पाठ	टीका	भावार्थ
१६	विकत्तातिवा	विविधतया कर्ता विकर्तयिता वा छेदेकः कर्मणामेव	कर्मोंको विधूणाता है याने करणी करके निरजरता है विखेरता है इस से विकत्ता
१७	जएतिवा	जएति-अतिशय गम नाज्जगत्	सर्व कर्मों की जीत कर जयी होता है।
१८	जंतूतिवा	जन्तुत्ति-जननाज्जन्तु	एक समय में लोकांते जाता है ऐसा शीघ्र चलने वाला है इस लिए जन्तु है।
१९	जोणीएति-वा	जोणीति-योनिरन्येषामुत्पाद-कत्वात्	चौरासी लक्ष प्रकारकी योनियों में उपजता है इसलिए इसका नाम योनि है।
२०	सयंभूतिवा	स्वयंभवनात् स्वयम्भ,	यह जीव स्वयं सदा अचल है इस को किसीने पैदा नहीं किया है।
२१	सशरीरी-तिवा	सह शरीरणेति शस-रीरी	शरीर के अन्दर रहता है सशरीरी है इस वास्ते इसका नाम शरीर है।
२२	नायातिवा	नायकः कर्मणां नेता	कर्मों का नायक याने मालिक है निज सुख दुःख का दायक है इ० नायक है।
२३	अंतर अप्यातिवा	अन्तर्मध्यरूपआत्मा न शरीररूप इत्यन्तरात्मेति	सर्व शरीर में व्याप्त है पुद्गलों में लोलीभूत होके निज सरूप को दवाया है।

उपरोक्त तेवीस नाम कहे हैं और इसी प्रकार से अनेक नाम जीव के कर्म संयोग वियोगादि कारण से जानना द्रव्यतः एक है भावतः अनेक है असंख्यात प्रदेशी तो द्रव्य जीव है और उस के लक्षण गुण-पर्याय भाव जीव है।

॥ ढाल तेहिज ॥

भाव तो--पांच श्रीजिन भाख्या, त्यांरा स्वभाव जुदा जुदा दाख्या। उदय उपशम क्षायक जाणो, क्षयोपशम परणामिक पिछाणो ॥२६॥ उदय तो आठ कर्म अजीव, त्यांरै उदय से निपना जीव, ते उदय भाव जीव छै ताम, त्यांरा अनेक जुवा जुवा नाम ॥२७॥ क्षयतो होवै आठ कर्म, जब क्षायक गुण निपजै पर्म। ते क्षायक गुण छै भाव जीव, ते उज्वल रहै सदीव ॥ २८॥ उपशमै छै मोहनीय कर्म एक, जीवरै निपजै गुण अनेक। ते उपशम भाव जीव छै ताम, त्यांरा पिण छै जुवा जुवा नाम ॥२९॥ वे आभरणी मोहनीय अन्तराय, यह च्यारूं कर्म क्षयोपशमथाय। तब उपजै क्षयोपशम भाव चोखो, ते भाव जीव निरदोखो ॥३०॥ जीव परिणामै जिण २ भाव मांही, ते सगला छै न्यारा न्यारा ताही। पिण परिणामिक सारा छै ताम, जैहवा तेहवा परिणामिक नाम ॥३१॥ कर्म उदय से उदय भाव होय, ते तो भाव जीव छै सोय। कर्म उप-

शमियांसूं उपशम भाव, ते उपशम भाव जीव इण-न्याय ॥३२॥ कर्म क्षय से क्षायक भाव होय, ते पिण भाव जीव छै सोय । कर्म क्षयोपशम से क्षयोपशम भाव, ते पिण छै भाव जीव इणन्याय ॥३३॥ च्यारूं भाव छै परिणामीक, यो पिण भाव जीव छै ठीक । और जीव अजीव अनेक, परिणामिक बिना नहीं एक ॥३४॥ ये पांचूंभाव भाव जीव जाणों, त्यांने रूडी रीत पिछाणों । उपजै ने विलै हो जाय, ते जीव छै इणन्याय ॥ ३५ ॥ कर्म संयोग वियोग से तेह, भाव जीव निपजै येह । च्यार भाव निश्चय फिर जाय, क्षायक भाव फिरै नहीं ताय ॥ ३६ ॥

॥ भावार्थ ॥

असंख्यात प्रदेशी द्रव्य जीव संसारी अनादि कालसे कर्म संतति के साथ लिप्त हो रहा है, अष्ट कर्मों के संयोग वियोग से भाव जीव होता है सो पांच प्रकार से जिनके नाम उदय भाव १, उपशम भाव २, क्षायक भाव ३, क्षयोपशम भाव ४, परिणामिक भाव ५, अष्ट कर्मों के उदय से उदय भाव जीव । सात कर्म उपशम होय नहीं एक मोह-नीय कर्म उपशमें याने दबै तब उपशम भाव अष्ट कर्मों के क्षय होनेसे क्षायक भाव जीव । ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अन्तराय यह च्यार कर्म क्षयोपशम हो तब क्षयोपशम भाव जीव । और उदय में, या उपशम में क्षायक में या क्षयोपशम में यह जीव परिणमें सो परि-णामिक भाव जीव जाणना उपरोक्त भावों में परिणमनेसे ८० बोलों की प्राप्ति होती है उनका वर्णन संक्षेप से यहां करते हैं—

१ उदय तो अष्ट कर्म अजीव है उनके उदय से ३३ बोल होते हैं सो जीव हैं नरकादि ४ गति, पृथिव्यादि ६ काय, कृष्णादि-६ लेश्या, क्रोधादि ४ कषाय, स्त्रियादि ३ वेद यह २३ हुए, मिथ्यात्वी २४, अव्रती २५, असन्नी २६, अन्नाणी २७, आहारता २८, संयोगी २९, छद्मस्थ ३०, अकेवली ३१, असिद्धता ३२, संसारता ३३,—

२ उपशम एक मोहनीय कर्म होता है सो अजीव है और मोहनीय कर्म के उपशमने से जीव के २ बोलों की प्राप्ति होती है सो उपशम भाव जीव हैं उपशम सम्यक्त १ उपशम चारित्र २

३ क्षय आठों ही कर्म होते हैं सो तो अजीव है उन के क्षय होने से १३ बोलों की प्राप्ति होती है सो क्षायक भाव जीव है, ज्ञानावरणी कर्म क्षय होने से जीवका जो निज गुन केवल याने सम्पूर्ण ज्ञान होता है।, दर्शनावरणी कर्म क्षय होनेसे जीव का दर्शनगुन है सो होता है केवल दर्शन, १ मोहनीय कर्म के दो भेद हैं दर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीय, दर्शन मोहनीय क्षय होनेसे क्षायक सम्यक्त, ३ चारित्र मोहनीय क्षय होने से क्षायक चारित्र, ४ वेदनी कर्म क्षय होने से आत्मिक सुख, ५ नाम कर्म क्षायक होने से अमूर्तिक भाव ६, गोत कर्म क्षय होने से अगुरु लघू ७, आयुष्य कर्म क्षय होने से अटल अवगाहना ८, अन्तराय कर्म क्षय होने से दान लब्धि ९, लाभ लब्धि १०, भोगलब्धि ११, उपभोगलब्धि १२, वीर्यलब्धि १३

४ क्षयोपशम ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अन्तराय इन चार कर्मों का होता है वो तो अजीव है इन चारों कर्मों का क्षय और उपशम होने से ३२ बोलों की प्रप्ति होती है वो क्षयोपशम भाव जीव हैं।

(१) ज्ञानावरणी कर्म क्षयोपशम होने से आठ बोलों की प्राप्ति होती है मति ज्ञान १ श्रुतिज्ञान २ अवधि ज्ञान ३ मन. पर्यव ज्ञान ४ मति अज्ञान ५ श्रुतिअज्ञान ६ विभंग अज्ञान ७ भणना याने सीखना

गुणना ८ (२) दर्शनावरणी कर्म क्षयोपशम होने से ८ बोलों की प्राप्ति होती है श्रोत्रइन्द्री १ (कान,) चक्षुइन्द्री २ (आंख) घ्राणइन्द्री ३ (नाक,) रसइन्द्री ४ (जीभ,) स्पर्शइन्द्री ५ (शरीर,) चक्षु दर्शन ६, अचक्षु दर्शन ७, अवधि दर्शन ८ ।

३ मोहनीय कर्म क्षयोपशम होने से ८ बोलों की प्राप्ति होती है सामायिक चारित्र १, छेदोस्थापनीय चारित्र २, प्रतिहार विशुद्ध चारित्र ३, सूक्ष्म संपराय चारित्र ४, देशव्रत (श्रावकपणां) ५, समदृष्टि ६, मित्थ्यादृष्टि ७, सम मित्थ्यादृष्टि ८ ।

४ अन्तराय कर्म क्षयोपशम होने से ८ बोलों की प्राप्ति होती है दानलब्धि १, लाभलब्धि २, भोगलब्धि ३, उपभोगलब्धि ४, वीर्य-लब्धि ५, बालवीर्य ६, पण्डित वीर्य ७, बाल पण्डित वीर्य ८,

अपरोक्त चार भावों के अस्सी बोलों में से कितनेक बोल जीव में हमेशा पावेहींगे, लक्षण गुण पर्याय को भाव जीव कहते हैं, तात्पर्य यह है कि गुणों की समुदाय तो द्रव्यजीव शाश्वता है, और गुणों में परिवर्तना, वो भाव जीव, पर्याय तें अशाश्वता है । उदय निष्पन्न, उपशम निष्पन्न, क्षायक निष्पन्न, क्षयोपशम निष्पन्न, और परिणामिक निष्पन्न, यह पांच भावों में से चार तो, कालान्तर में पलट जाते हैं, और क्षायक निष्पन्न भाव हुए बाद नहीं पलटता है, सो बुद्धिमानजन इसको-यथा तथ्य समझलेंगे

॥ ढाल तेहिज ॥

द्रव्य तो शाश्वतो छै ताहि, ते तो तीनूहीं काल रे मांहि । ते तो विलय कदे नहीं होय, द्रव्य तो ज्यूंरो ज्यूं रहसी सोय ॥ ३७ ॥ ते तो छेद्यो न कदे छेदावै, भेद्यो पिण कदे नांही भेदावै । जाल्यो पिण

जलै नाहीं, बाल्यो पिण न वलै अग्नि मांहि ॥ ३८ ॥ काट्यो पिण कटै नहीं कांई, गालै तो पिण गलै नाहीं। बांटै तो पिण नहीं बंटाय, घसै तो पिण नहीं घसाय ॥ ३६ ॥ द्रव्ये असंख्यात प्रदेशी जीव, नितरो नित्य रहै सदीव। ते मास्यो पिण मरै नांहि, वलै घटै वधै नांहि कांई ॥ ४० ॥ द्रव्य तो असंख्यात प्रदेशी, ते तो सदा ज्यूंरो ज्यूं रहसी। एक प्रदेश पिण घटै नाहीं, ते तो तीनूं ही काल रे मांहि ॥ ४१ ॥ खंडायो पिण नखंडै लिगार, नित्य सदा रहै एक धार। एहवो छै द्रव्य जीव अखंड, अखी थको रहै इण मंड ॥ ४२ ॥

॥ भावार्थ ॥

द्रव्यतः जीव शाश्वता है याने जीव का अजीव तीन काल में कभी भी नहीं होता है, जीव को छेदने से छेद नहीं होता है भेदने से भेद नहीं होता है, जलानेसे जलता नहीं बालने से बलता नहीं काटने से असंख्याता परदेशों के टुकडे टुकडे नहीं होते गालने से गलता नहीं, पीसने से पिसता नहीं, घसने से घसता नहीं, असंख्यातप्रदेशों में से कमी वेसी किसी काल में होती नहीं और एक जीव के प्रदेश दूसरे जीव में नहीं मिलते हैं अरूपी अभेदी अछेदी है, ऐसा जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेश मयी स्वक्षेत्र में रहता है इस वास्ते जीव को द्रव्यार्थ करके शाश्वता कहा है अब भावार्थ करके अशाश्वता कहा सो कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

द्रव्यरा अनेक भाव छै ताय, ते तो लक्षण गुण पर्याय। भाव लक्षण गुण पर्याय, ये च्यारुं भाव जीव छै ताय ॥ ४३ ॥ यह चारूं भलाने भूंडा होय, एक धारा न रहे कोय। केई क्षायक भाव रहसी एक धार, नीप्यना पछै न घटै लिगार ॥ ४४ ॥ द्रव्यजीव शाश्वतो जाणो, तिणमें शंका मूल म आणो, भगवती सातमा शतक मांय, दूजै उद्देशै कह्यो जिनराय ॥ ४५ ॥ भावे जीव अशाश्वतो जाणो, तिण में पिण शंका मूल म आणो। ए पिण सातमा शतक मांय, दूजै उद्देशै कह्यो जिनराय ॥ ४६ ॥ जेती जीव तणी पर्याय, अशाश्वती कही जिनराय। तिणने निश्चय भाव जीव जाणो, तिणने रूडी रीत पिछाणो ॥ ४७ ॥ कर्मा रो करता जीव छै तायो, तिणसूं आस्रव नाम धरायो। ते आस्रव छै भाव जीव, कर्म लागै ते पुद्गल अजीव ॥ ४८ ॥ कर्म रोकै छै जीव तायो, तिण गुणसूं संवर कहायो। संवर गुण छै भाव जीव, रुकिया छै कर्म पुद्गल अजीव ॥ ४९ ॥ कर्म तूटां जीव उज्वल थायो, तिणने निर्जरा कही जिनरायो, ते निर्जरा छै भाव जीवो, तूटै ते कर्म पुद्गल अजीवो ॥ ५० ॥

समस्त कर्मा से जीव मुंकायो, तिणसूं ए जीव मोक्ष कहायो । मोक्ष ते पिण छै भाव जीव, मुंकिया गया कर्म अजीव ॥ ५१ ॥ शब्दादिक काम ने भोग, त्यांने त्यागी ने पाडै वियोग । ते तो संवर छै भाव जीव, तिणसूं रूकिया छै कर्म अजीव ॥ ५२ ॥ शब्दादिक कामनं भोग, तेहनूं करै संजोग, ते तो आस्रव छै भावजीव, तिणसूं लागै छै कर्म अजीव ॥५३॥ निरजराने निरजरानी करणी, यह दोनूं हीं जीवने आदरणी, यह दोनूं छै भाव जीव, तूटाने तूटै कर्म अजीव ॥ ५४ ॥ काम भोग से पामै आरामो, ते संसार थकी जीव स्हामो, ते आस्रव छै भावजीव, तिणसूं लागै छै कर्म अजीव ॥ ५५ ॥ काम भोग थकी नेह टूटो, ते संसार थकी छै अपूठो । ते संवर निर्जरा भाव जीव, जब रूकै तुटै ते कर्म अजीव ॥ ५६ ॥ सावद्य करणी छै सर्व अकार्ज, ते तो सगला छै कर्तव्य अनार्ज । ते सगला छै भाव जीव, त्यांसूं लागै छै कर्म अजीव ॥ ५७ ॥ जिन आज्ञा पालै रुडी रीत, ते पिण भाव जीव सुविनीत । जिन आज्ञा लोपी चालै कुरीत, ते छै भाव जीव अनीत ॥ ५८ ॥ शूर वीर संसार रै माहीं, किणरा डराया डरै नांही, ते पिण छै भाव जीव संसारी, ते तो हुवो अनन्ती

बारी ॥ ५९ ॥ सांचा शूरवीर साक्षात्, ते तो कर्म काटै दिनरात, ते पिण भाव जीव छै चोखो, दिन दिन नैडी करै मोखो ॥ ६० ॥ कहि कहिने कितो-यिक कहूं, द्रव्यने भाव जीव छै बेहूं, त्यानें रूडी रीत पिछाणो, छै ज्यूंरा ज्यूं हिया में आणो ॥ ६१ ॥ द्रव्य भाव ओलखावन ताम। जोड़ कीधो श्रीजीद्वारा सू ठाम। सम्बत अठारह सय पचपन वर्ष, चैत बदी पख तिथि तेरस ॥ ६२ ॥

इति जीव पदार्थ ओलखना को ढाल।

॥ भावार्थ ॥

द्रव्यके अनेक भाव है, लक्षण पर्याय इन च्यारों को भाव जीव समझना, जीवका लक्षण चैतन्य गुण ज्ञानादि, पर्याय, ज्ञान करके अनन्त पदार्थ को जाणै इस से अनन्तो पर्याय है वो अशाश्वती है, कर्मों का क्षायक हो के जो भाव निष्पन्न होता है वो शाश्वता है, श्री भगवती सूत्र के सात में शतक के दूजे उद्देशे द्रव्यतः जीव शाश्वता और भावत· अशाश्वता कहा है इस में किसी तरह की शंका नहीं रखनी चाहिये, जीव तो द्रव्य है और उसकी पर्याय भाव है इसे अच्छी तरह समझना और पहिचानना चाहिए। कर्मोंको ग्रहण करे वो आस्रव भाव जीव है, कर्मों को रोकै वो संवर भाव जीव है, देशतः कर्म तोड़ देशतः जीव उज्वल होय वो निर्जरा भाव जीव है, सर्वतः कर्मोंको मुंकावे याने छांडे वो मोक्ष भावजीव है, शब्दादिक काम भोगोंका वियोग को वांछे सो संवर भाव जीव। और कर्म रुके वे अजीव। शब्दादिक काम भोगों का वियोग न वांछे वो आस्रव भावजीव। कर्म लगे वो अजीव हैं, जीव देशतः जीव उज्वल होय वो निर्जरा और अणसणादि

द्वादश प्रकार से कर्म निर्जरे वो निर्जरा की करणी है निर्जरा और निर्जरा की करणी यह दोनों ही जीव को आदरणीयोग्य है। जीव इन्द्रियों के काम भोगों से आराम मानें वो संसार से सन्मुख है इसलिए जीव का नाम आस्रव है, और काम भोगों से विरक्त रहे यह संसार से विमुख है इसलिए जीवका नाम संवर है। जीवका सावद्य कर्तव्य अनार्य पणा है उस से कर्म बंधते हैं उस करणी का नाम आस्रव है। सो भाव जीव है। जिन आज्ञा प्रमाण कार्य करता है वो सुविनीत भाव जीव और जिन आज्ञा लोप के कुरीत चले वो अनीत भाव जीव है। शूरवीर पुरुष संसार में संग्राम करते हैं किसी के डराये डरते नहीं वो सांसारिक शूरवीर भाव जीव हैं, और कर्म मयी शत्रू को नाश करते हैं वे सच्चे धार्मिक भावजीव हैं, तात्पर्य यह है कि असंख्यात प्रदेश अखंड है वो द्रव्य जीवसदा सर्वदा शाश्वता है याने जीव द्रव्य का अजीव द्रव्य कभी भी नहीं होता है और उसीके गुण पर्याय हैं वो भाव जीव हैं वो अशाश्वता है इनको यथार्थ जैसे ज्ञानी देवों ने जिस जिस अपेक्षा से कहा है उसी तरह से जान के सत्य श्रद्धो, जीव पदार्थ को द्रव्यतः और भावतः ओलखाने के लिए स्वामी श्री भीखनजीने विक्रम संवत् १८५५ चैत विद १३ को मेवाड देशान्तर्गत श्रीनाथद्वारा में ढाल जोड के कहा है इसका भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धि अनुसार कहा है सो कोई अशुद्धार्थ जाणते अजाणते आया हो उसका मुझे सर्वतः मिच्छामि दुक्कडं है गुणीजन शुद्ध पढ़ें पढावेंगे —

आपका हितेच्छू

जोंहरी गुलाबचन्द लूणीयां

॥ अथ द्वितीय अजीव पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

अजीव पदार्थ ओलखायवा, तिणरा कहूं भाव भेद ।
थोड़ासा प्रगट करूं, ते सुणज्यो आण उमेद ॥१॥

॥ ढाल ॥

मम करो काया माया कारमी पदेशी ।

धर्म अधर्म आकाश छै, काल ने पुद्गल जाणजी । ये पांचू हीं द्रव्य अजीव छै, त्यांरी बुद्धिवन्त करज्यो पिछाण जो ॥ हिव अजीव पदार्थ ओलखो ॥ १ ॥ यह चारूं ही द्रव्य अरूपी कह्या, यांमें वर्ण गंध रस स्पर्श नाहिंजी । एक पुद्गल द्रव्य रूपी कह्यो, वर्णादिक सर्व तिण मांहिजी ॥ हि ॥ २ ॥ यह पांचू ही द्रव्य भेला रहै, पिण भेल सभेल नहीं होयजी । आप आप तणा गुण लेरह्या, त्यांने भेला कर सके नहीं कोयजी ॥ हिव ॥ ३ ॥ धर्म द्रव्य धर्मास्तिकाय छै, आस्ति ते छती वस्तु ताहजी । असंख्यात प्रदेश छै तेहना, तिणसूं काय कही जिणरायजी । हिव ॥ ४ ॥ अधर्म द्रव्य अधर्मास्ति काय छै, या पिण छती वस्तु तायजी, असंख्यात प्रदेश छै तेहसूं, काय कही इण न्याय

जो ॥ हिव ॥ ५ ॥ आकाश द्रव्य आकाशास्तिकाय छै, या पिण छती वस्तु तायजी। अनन्त प्रदेश छै तेहना, तिणसूं काय कही जिनरायजी ॥ हिव ॥६॥ धर्मास्ति अधर्मास्ति काय तो, पहुली छै लोक प्रमाणजो। लोकालोक प्रमाण आकाशास्ति, लांबी नें पहुली जाणजी ॥ हिव ॥७॥ धर्मास्ति ने अधर्मास्ति, वलि तीजी आकाशास्ति कायजी। यह तीनूं ही कही जिन शाश्वती, तीनूं ही कालरै मांहिजी ॥ हिव ॥८॥ यह तीनूं ही द्रव्य छै जुवा २, जुवा जुवा गुण पर्यायजी। त्यांरा गुण पर्याय पलटै नहीं, शाश्वता तीन काल रे मांहिजी ॥ हिव ॥ ६ ॥ यह तीनूं ही द्रव्य फैली रह्या, ते हालै चालै नहीं तायजी। हालै चालै ते पुद्गल जीव छै, ते फिरै लोकरे मांहिजी ॥ हिव ॥१०॥ जीव पुद्गल चालै तेहने, सहाय धर्मास्ति कायजी, अनन्ता चालै त्यानें सहाय छै, तिणसूं अनन्ती कही पर्यायजी ॥ हिव ॥ ११ ॥ जीव ने पुद्गल थिर रहै तिणने सहाय अधर्मास्ति कायजी। अनन्ता थिर रहै त्यांने सहाय छै, तिणसूं अनन्ती कही पर्यायजी ॥हिव॥१२॥ जीव अजीव सर्व द्रव्यनो, भाजन आकाशास्ति कायजी। अनन्तारो भाजन छै तेहसूं अनन्ती कही पर्यायजी ॥ हिवे ॥ १३ ॥ चालवाने सहाय

धर्मास्ति। थिर रहवाने अधर्मास्ति कायजी। आकाशविकास भाजन गुण। सर्व द्रव रहै तिणमांयजी ॥ हिवे ॥ १४ ॥ धर्मास्तिना तीन भेद छै। खंध अने देश प्रदेशजी। आखी धर्मास्ति खंध छै, ते ऊंणी नहीं लवलेशजी ॥ हिवे ॥ १५ ॥ दोय प्रदेश थी आदि दे, एक प्रदेश ऊणू खंध न होयजी। तिहां लगि देश प्रदेश छै, तिणने खंध म जाणजो कोय जी ॥ हिवे ॥ १६ ॥ धर्मास्तिरो एक प्रदेश छै, ते खंध देश न कोयजी। जघन्यतो दोय प्रदेश बिन, देश पिण कदेय नहीं होयजी ॥ हिवे ॥ १७ ॥ धर्मास्ति काय संथाले पड़ी, तावड़ा छांय जिम एक धारजी। तिणरै बाड़ो ने बींटो को नहीं, बलि नहीं कोई सांध लिगारजी ॥ हिवे ॥ १८ ॥ पुद्गलास्ति से प्रदेश अलगो पड्यो, तिण ने परमाणु कह्यो जिनरायजी। ते सूक्ष्म परमाणु थकी, तिणसूं मापि धर्मास्ति, कायजी ॥ हिवे ॥ १९ ॥ एक परमाणु स्पर्शैं धर्मास्ति, तिणने प्रदेश कह्यो जिरनायजी। तिण मापासूं धर्मास्ति कायना, असंख्याता प्रदेश हुवै तायजी ॥ हिवे ॥ २० ॥ असंख्यात प्रदेशी धर्मास्ति, अधर्मास्ति इमहिज जाणजी। इम अनन्ता आकाशास्ति कायना, प्रदेश इण रीत पिछाणजी ॥ हिवे ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब अजीव पदार्थ को ओलखाते हैं, अजीव पांच प्रकारके हैं धर्मास्ति १ अधर्मास्ति २ आकाशास्ति ३ काल ४ पुद्गलास्ति ५ यह पांच अजीव है, इनमें चार तो अरूपी हैं जिनमें वर्ण रस गंध स्पर्श नहीं है, और एक पुद्गल द्रव्य रूपी है, धर्मास्तिकाय का धर्म याने स्वभाव चलते हुए जीव पुद्गलों को चलने का सहाय देने का है, चलने का प्रति पक्ष स्थिर है इसलिये धर्मास्ति काय का स्वभाव स्थिर को स्थिर सहायथी है, और आकाशास्ति का स्वभाव अवकाश देने का है यह तीनूं स्वयं थिर है, यह तीनों छती वस्तु है इस से इनको आस्ति कही है याने समझाने को सिर्फ कल्पना करके ही नहीं कहे हैं, धर्मास्ति अधर्मास्ति आकाशास्ति यह तीनूं ही अजीव द्रव्य निश्चय अरूपी है जैसे धूप छाया वत् जानना और यह सप्रदेशी याने प्रदेश सहित समूह है इस वास्ते इन्हें काय कही है, इन तीनों में धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय तो चौदह राजु लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश हैं और आकाशास्तिकाय लोकालोक प्रमाण अनन्त प्रदेशी हैं, तथा यह तीनूं ही काल में शास्वते हैं इनके गुण पर्याय अपने २ अलग २ हैं कभी भी पलटते नहीं हैं याने परस्पर कभी भी मिलते नही तथा यह तीनों द्रव्य हलते चलते नहीं हैं, पांच द्रव्योंमें जीव और पुद्गल सिर्फ दोही द्रव्य हलते चलते हैं, जिन्हों को सहाय धर्मास्ति काय का है, जीव पुद्गल स्थिर रहैं उन्हो को सहाय अधर्मास्ति काय का है, और भाजन याने अवकाश गुण देना आकाशास्ति काय है, परन्तु ऐसा कभो भी नहीं होता कि धर्मास्ति का गुण चलन सहायी है सो पर्याय पलट के कालान्तर में स्थिर सहायी हो जाय अथवा भाजन सहायी हो जाय ऐसे ही अधर्मास्ति की और आकाशास्ति की पर्याय नहीं पलटती है धर्मास्ति काय चलते हलते अनन्त जीवों को और अजीवों को सहाय देती है इससे धर्मास्ति काय की अनन्ती पर्याय है, ऐसे ही अधर्मास्ति और आकाशास्ति काय की गुणों की अनन्ती पर्याय

जानना, अब इन तीनों को तीन तीन भेद करके बताते हैं खंध देश प्रदेश, सर्व धर्मास्ति का प्रदेशों का समूह है, वो तो खंध है, दो प्रदेशों से एक प्रदेश कम तक देश है, और एक प्रदेश प्रदेश है, दोय प्रदेशों से कम देश नहीं होता और एक प्रदेश कम बाकी प्रदेशों को खंध नहीं कहा जाता, अब एक प्रदेश का मान बताते हैं पुद्गलास्ति काय से एक प्रदेश अलग हुआ उसे परमाणु पुद्गल कहते हैं याने उत्कृष्ट अणु छोटे से छोटा है वो काटने से कटता नहीं और पीसने से पिसता नही ऐसा सूक्ष्म एक परमाणु है उतना ही धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश है, ऐसे ही अधर्मास्ति आकाशास्ति का जानना, तात्पर्य एक परमाणू एक प्रदेश तुल्य है, असत्त कल्पना दृष्टान्त देके कहते हैं कोई पुरुष एक परमाणू से धर्मास्ति को नापे तो असंख्यात प्रदेश होय ऐसे ही अधर्मास्ति के असंख्यात प्रदेश, इसी तरह हैं आकाशास्ति के अनन्त प्रदेश हों, अब काल पदार्थ का वर्णन करते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

काल अजीव छै तेहना, द्रव्य कह्या छै अनन्तजी। निष्पन्ना निपजै निपजसी वलि, त्यांरो कदेह न आवसी अन्तजी ॥ हिव ॥ २२ ॥ गये काल अनन्ता समा हुवा, वर्तमान समय एक जाणजी। आगमियें काल अनन्ता समा हुसी, इमकाल द्रव्यने पिछाणजी ॥ हिव ॥ २३ ॥ काल द्रव्य निपजवा आसरी, तिणने शाश्वतो कह्यो जिनरायजी। उपजै ने विणसै तिण आसरी, अशाश्वतो जाणो इण न्यायजी ॥ हिव ॥ ॥ २४ ॥ तिणसूं काल द्रव्य नहीं शाश्वतो, उपजै

जेम प्रवाहजी। समो उपजै ते विणसै सही, तिणरो कदेह न आवे छै थाहजी ॥ हिव ॥ २५ ॥ सूर्य ने चन्द्रमादिकरी चालसे, समो निपजै दगचालजी। निपजवा लेखे तो काल शाश्वतो, समयादिक सर्व अद्धकालजी ॥ हिव ॥ २६ ॥ एक समो निपजी ने विणस गयो। पछै दूजो समो हुवो ताहायजी। दूजो विणस्यां तीजो निपजै, इम अनुक्रमें निपजता जायजी ॥ हिव ॥ २७ ॥ काल वर्ते अढ़ाई द्वीपमें, अढ़ाई द्वीप बारै काल नांयजी। अढ़ाई द्वीप बारला जौतषी, एक ठाम रहै छै तायजी ॥ हिव ॥ २८ ॥ दोय समयादिक भेला हुवै नहीं, तिणसूं कालने खंध न कह्यो जिनरायजी। खंध तो हुवै घणारा समुदायथी, समुदाय विन खंध नहीं थायजी ॥ हिव ॥ २९ ॥ गये काल अनन्ता समा हुवा, ते येकठा भेला नहीं हुवा कोयजी। येतो ऊपजै ने तिम विणसे गया, तिणरी खंध किहांथकी होयजी ॥ हिव ॥ ॥ ३० ॥ आगमियें काल अनन्ता समा हुसी, ते पिण येकठा भेला न हुवै कोयजी। ते उपजै ने विलला-यसी, तिणसूं खंध किसोपर होयजी ॥ हिव ॥ ३१ ॥ वर्तमान समो एक कालरो, एक समारो खन्ध नहीं होयजी। ते पिण उपजै ने विललायसी, कालरो

स्थिर द्रव्य नहीं कोयजी ॥ हिव ॥ ३२ ॥ खन्ध बिन देश हुवै नहीं, खन्ध देश बिन हुवै नहीं प्रदेशजी। प्रदेश अलगो नहीं हुवै खन्धथी, तिणसूं परमाणु नहीं लवलेशजी ॥ हिव ॥ ३३ ॥ तिण सूं काल ने खन्ध कह्यो नहीं, वले नहीं कह्यो देश प्रदेशजी। खन्धथी छूट अलग पड्यां बिना। परमाणुवो कौण गिणेशजी ॥ हिव ॥ ३४ ॥ कालरो मापो थाप्यो तीर्थंकरां, चन्द्रमादिकरी चालसूं विख्यातजी। ते चाल सदा काल शाश्वती, घटै वधै नहीं तिलमात-जी ॥ हिव ॥ ३५ ॥ तिणसूं मापो तीर्थंकरां बांधियो, जघन्य समय स्थाप्यो एकजी। ए जघन्य स्थिति कालरा द्रव्यरी, तिणथी अधिकरा भेद अनेकजी ॥ ॥ हिव ॥ ३६ ॥ असंख्याता समयरी थापी आंवलिका, पछै मुहूर्त पहोर दिन रातजी। पक्ष मास अयन ऋतु स्थापिया, दोय अयनरो वर्ष विख्यातजी ॥ हिव ३७ ॥ इम कहतां २ पल्योपम सागरू, उतसर्पणी ने अवशर्पणी जाणजी। जीव पुद्गल प्रावर्तन स्थापिया, इम काल द्रव्यने पिछाणजी ॥ हिव ॥ ३८ ॥ इण विधि गयो काल नीकल्यो, इमहिज आगमियो काल जी। वर्त्तमान समो पूछै तिणसमै, एक समय अद्धा-काल जी ॥ हिव ॥ ३९ ॥ ते समय वर्तै अढी द्वीपमें,

तिर्छों इतनी दूर जाण जी। उंचो वर्तै जौतिष चक्र लगै, नवसय योजन प्रमाणजी ॥ हिव ॥ ४० ॥ नींचो वर्तै सहस्र योजन लगै, महा विदेहरी दोय विजय मांय जी। त्यांमें वर्तै अनन्ता द्रवां ऊपरै, तिणसूं अनन्ती कही पर्याय जी ॥ हिव ॥ ४१ ॥ एक एक द्रव्यरै ऊपरै। एक २ समय गिरायो ताय जी। तिणसूं एक समा ने अनन्ता कह्या, काल तणी पर्याय रे न्याय जी ॥ हिव ॥४२॥ वलि कहि कहिने कितरो कहूं, वर्त्तमान समय सदा एकजी। तिण एकण ने अनन्ता कह्या, तिणने ओलखो आण विवेकजी ॥ हिव ॥ ४३ ॥

॥ भावार्थ ॥

काल पदार्थ के अनन्त द्रव्य हैं सो हुए होय और होसी जिस का विस्तार कहते हैं, गत काल में अनन्ता समा हुआ वर्त्तमान में एक समय और आगमियां काले अनन्ता समा होवेंगे किसी वक्त में काल का समय नहीं वर्तता ऐसा कभी भी नहीं होता है, इस अपेक्षाय से काल शाश्वता है, और समय उपजके बिनश जाता है इससे अशाश्वता है जैसे निपजता है वैसे ही नाश होता है, भूत भविष्यत और वर्त्तमान के समय एकत्र नहीं होता इससे काल द्रव्य का खन्ध नहीं, और खन्ध विना देश और प्रदेश नहीं जिससे इस काल द्रव्य के संग आस्ति शब्द नहीं है, तीर्थङ्कर देवोंने चन्द्रमा सूर्यादिक की चाल से काल का प्रमाण कहा है, निरोगी पुरुष का एक नेत्र फरके उतना वक्त के असंख्यात समय और असंख्यात समय की एक आवलिका पिछे मुहूर्त्त दिन रात्रि

पक्ष मास ऋतु अयन वर्ष पल्योपम सागरोपम और बीस कोडा कोडि सागरोपम का एक काल चक्र, और अनन्त काल चक्र का एक पुद्गल परिवर्तन आदि का प्रमाण जम्बू द्वीप पन्नती में विस्तार पूर्वक कहा है, तात्पर्य जघन्य कालकी स्थिति एक समय है इस तरह से एक समय पीछे दूसरा और दूसरे पीछे तीसरा इसी तरह समय उत्पन्न होके विनश जाते है यह वर्तना रूप काल ढाई द्वीप और दो समुद्र में है आगे को नहीं क्योंकि अर्ध पुष्कर वर द्वीप से आगे ज्यो जौतिष चक्र है वो स्थिर है और अन्दर के जौतषी चर हैं उनकी चाल सदा तीन काल में शाश्वती एकसी है किञ्चित भी फर्क नहीं होता है इस से कालका प्रमाण कहा है, वर्तमान का एक समय अनन्ते, जीवों और अजीवों पर वर्तता है जिससे कालकी अनन्ती पर्याय है, तथा इसीसे कालके अनन्ते द्रव्य कहे हैं, क्योंकि वर्त्तमान का समय अनन्ते द्रव्यों पर वर्ता तो अनन्ते समय हुए, मतलब उसी एक समय को द्रव्यतः अनन्ता कहा है, क्षेत्रतः तिरछा ४५ लक्ष योजन प्रमाण, ऊंचा सम भूमि से ६०० योजन जौतिष चक्र प्रमाण, और नींचा १००० योजन तक जानना, कारण महा विदेह क्षेत्र की २ विजय एक हजार योजन सम भूमि से नीची है, इसलिये नीचा एक हजार योजन तक काल वर्तता है, यह वर्तना रूप काल है, गत काल तो आदि अन्त रहित, वर्तमान काल आदि सहित अन्त सहित, भविष्यत् काल आदि सहित और अन्त रहित है, ये काल द्रव्य अजीव अरूपी हैं, इसके वर्ण गन्ध रस स्पर्श नहीं है, और वर्त्तमान का समा एक ही है।

॥ ढाल तेहिज ॥

काल द्रव्य अरूपीतणुं, ते कह्यो छै अल्प बिस्तारजी। हिव पुद्गल द्रव्य रूपीतणूं, बिस्तार सुणो एक धारजी॥ हिव ॥ ४४ ॥ पुद्गलरा द्रव्य अनन्ता कह्या,

ते द्रव्यतो शाश्वता जाणजी । भावे तो पुद्गल अशाश्वतो, तिणरी बुद्धिवन्त करिजो पिछाणजी ॥४५॥ पुद्गल द्रव्य अनन्ता कह्या, ते घटै वधै नहीं एकजी । घटै वधै ते भाव पुद्गलू । तिणरा छै भेद अनेक जी ॥ हिव ॥ ४६ ॥ तिणरा च्यार भेद जिनवर कह्या, खन्ध ने देश प्रदेशजी । चौथो भेद न्यारो परमाणुवो । तिणरो छै योहिज विशेषजी ॥ हिव ॥ ४७ ॥ खन्धरे लग्यो तिहां लग प्रदेश छै, ते छूट ने एकलो होयजी । तिणने कहिजै परमाणुवो, तिणमें फेर पड़्यो नहीं कोयजी ॥ हिव ॥ ४८ ॥ परमाणुवो ने प्रदेशतुल्य छै, तिणमें शंका मूल मत आणजी, अंगुलरे असंख्यातमें भाग छै, तिणने ओलखो चतुर सुजाणजी ॥ हिव ॥ ४९ ॥ उत्कृष्टो खन्ध पुद्गल तणूं, जव संम्पूर्ण लोक प्रमाण जी । आंगुलरै भाग असंख्यातमें, जघन्य खन्ध येतलो जाणजी ॥ हिव ॥ ५० ॥ अनन्त प्रदेशियो खन्ध हुवै, एक प्रदेश क्षेत्रमें समायजी । ते पुद्गल फैलै मोटो खन्ध हुवै, ते संपूर्ण लोकरे म्हांयजी ॥ हिव ॥ ५१ ॥ समुचय पुद्गल तीन लोक में, खाली ठोर जगां नहीं कायजी । आहमां साहमां फिर रह्या लोकमें, एक ठाम रहे नहीं तायजी ॥ हिव ॥५२॥ स्थिति च्यारूं ही भेदां तणी, जघन्य

एक समय तामजी। उत्कृष्टो असंख्यात कालरी, ये भाव पुद्गल तणा परिणामजी ॥ हिव ॥ ५३ ॥ पुद्गल रो स्वभाव छै एहवो, अनन्ता गलै ने मिलजायजी। तिण पुद्गल रा भावरी, अनन्ती कही पर्यायजी ॥ हिव ॥ ५४ ॥ जे जै वस्तु निपजै पुद्गल तणी, ते तो सघली विललायजी, त्याने भाव पुद्गल श्रीजिन कह्या, द्रव्य तो ज्यूंरो ज्यूं रह तायजी ॥ हिव ॥ ५५ ॥ आठ कर्म ने शरीर अशाश्वता, एह निपन्ना हुवा छै तायजी। तिणमें भाव पुद्गल कह्या तेहने, द्रव्य निपजायो नहीं निपजायजी ॥ हिव ॥ ५६ ॥ छाया तावड़ो प्रभा कान्ति छै, एह सघला भाव पुद्गल जाणजो। अंधारो ने बलि उद्योत छै, एह भाव पुद्गल पिछाणजी ॥ हिव ॥ ५७ ॥ हलको भारी सुंहालो खरखरो, गोल वाटला-दिक पांच संठाणजी। घड़ा पडाने वस्त्रादिके, सघला भाव पुद्गल जाणजी ॥ हिव ॥ ५८ ॥ घृत गुलादिक दशूं बिगय, भोजनादिक सब बखाणजी। वस्त्र विविध प्रकार ना, एह सघला ही भाव पुद्गल जाणजी ॥ हिव ॥५६॥ सैंकड़ा मण पुद्गल वल गया, द्रव्यतो नहीं वलै अंशमातजी। ए भाव पुद्गल उपना हुंता, ते पिण भावे पुद्गल विलैजातजी ॥ हिव ॥ ६० ॥ सैकड़ां मण पुद्गल ऊपना, द्रव्य तो नहीं ऊपना लिगार-

जी। ऊपना तेहिज बिणससी, पिण द्रव्यरो नहीं बिगारजी ॥ हिव ॥ ६१ ॥ द्रव्य तो कदेही बिणसै नहीं, तीनूं हीं कालरे मांयजी, ऊपजै बिणसै तेतो भावछै, ते पुद्गल तणी पर्यायजी ॥ हिव ॥ ६२ ॥ पुद्गल ने कह्यो शाश्वतो अशाश्वतो, द्रव्य अने भावरै न्याय जी। कह्यो छै उत्तराध्ययन छत्तीसमें, तिणमें शंका मत आणज्यो कायजी ॥ हिव ॥ ६३ ॥ अजीव द्रव्य ओलखायवा, जोड़ कोधी छै ओजो द्वारा मझारजी। सम्वत् अट्ठारह पचावने, बैशाख बद् पञ्चमी बुधवारजी ॥ हिव ॥ ६४ ॥ इति अजीव पदार्थ ॥

॥ भावार्थ ॥

काल द्रव्य अरूपो का विस्तार अल्प मात्र कह्या अब पुद्गल द्रव्य रूपीका बिस्तार कहते हैं, पुद्गल का स्वभाव पूर्ण गलन है सो पुद्गल अचेतन रूपी है द्रव्यतः अनन्ता द्रव्य हैं सो तीन काल में शाश्वता हैं कुछ घटता नहीं, वा बधता नहीं और भावतः अशाश्वता है, पुद्गल के च्यार भेद जिनेश्वर देवोंने कहे हैं, खन्ध देश प्रदेश और चौथा भेद अलग प्रमाणू, जबतक खन्ध के साथ हैं तबतक उसी का नाम प्रदेश है, खन्ध से छूटके अलग होके एकला रहने से उसका नाम प्रमाणू है, प्रमाणू और प्रदेश दोनूं तुल्य है आंगुल के असंख्यात में भाग अना-वस्थित अवगाहना है, तथा पुद्गलों का खन्धकी अवगाहना भी जघन्य तो आंगुल के असंख्यात में भाग हैं उत्कृष्टी सम्पूर्ण लोक प्रमाण है परन्तु अनन्त प्रदेशिया खन्ध एक आकाश प्रदेश में समा

जाता है इसका कारण आकाश प्रदेश का स्वभाव अवकाश देने का ही है, एक आकाश प्रदेश क्षेत्रमें समाया हुआ पुद्गलों का खन्ध फैलकर सम्पूर्ण लोक प्रमाण हो जाता है ऐसा गलन मलन गुन पुद्गलों का है, खन्ध देश प्रदेश और प्रमाणू इन च्यारों ही की स्थिति जघन्य एक समय है उत्कृष्टी असंख्याता कालकी है असंख्यात काल पीछे प्रमाणुओं का खन्ध हुआ सो विखर जाता है तथा खन्ध से अलग एकला रहा सो पर्माणू भी असंख्यात कालसे ज्यादह नहीं ठहरता है, ऐसा हो पुद्गलों का परिणाम है सो भाव है इसलिये भाव पुद्गल अशाश्वता है और अनन्त गलन मलन रूप अनन्ती पर्याय है, ज्यो २ बस्तु पुद्गलों की होती है सो सब नाश होती है वो भाव पुद्गल है परन्तु पुद्गलत्वपणा शाश्वता है जैसे सोने को गालके गहना बनाया तो आकार का विनाश परन्तु सोनेका विनाश नहीं वैसे ही पुद्गलोंकी व-स्तुका विनाश लेकिन पुद्गलका विनाश नहीं होता है, आठ कर्म शरीर छाया तावड़ा प्रभा कान्ति अन्धकार उद्योग ए सब भाव पुद्गल अशा-श्वते हैं, हलका भारी खरदरा मुलायिम तथा गोल लंबा आदि संस्थापन घृत गुड़ आदि दसूं विगय वस्त्र आभूषण आदि अनेक वस्तुयें हैं सो सब भाव पुद्गल जानना, सैकडों हजारों मण बल जाते हैं तथा ऊपजे हैं सो सब भाव पुद्गल हैं द्रव्यतो अग्नसे बालने से बलता नहीं और निपजता नहीं अर्थात् पुद्गलत्वपणा है सो द्रव्य है वो शाश्वता है, और अनेक बस्तु पणे परिणमें वो भाव पुद्गल अशाश्वता है इसलिये पुद्गल को द्रव्यतः शाश्वता और भावतः अशाश्वता श्री उतराध्ययन के छत्तीसमें अध्ययन में कहा है इस में कोई शंका नहीं रखनी चाहिए, स्वामी भीखनजी कहते हैं अजीव पदार्थ को उलखाने के लिये ढाल जोड़ के श्रीजीद्वार नगरमें कही है सम्वत् अठारहसय पचपन वर्ष वैशाख विद् ५ शनिवार, यह अजीव पदार्थ को ढाल का भावार्थ मेरी तुच्छ बुद्धि प्रमाण कहा है ज्यो कोई अशुद्धार्थ हुआ, उसका मुझे बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं है ।

॥ अथ तृतीय पुन्य पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

पुन्य पदार्थ तीसरो, तिणसूं सुख मानै संसार। काम भोग शब्दादिक पामैं तिण थकी, तिणने लोक जाणै श्रीकार ॥ १ ॥ पुन्यरा सुख छै पुद्गल तणा, काम भोग शब्दादिक जाण। मीठा लागै छै कर्म तणे वशे। ज्ञानी तो जाणे जहर समान ॥ २ ॥ जहर शरीर में तिहां लगै, मीठा लगै नीम-पान। ज्यूं कर्म उदय थी जीवने, भोग लागै अमृत समान ॥ ३ ॥ पुन्य रा सुख छै कारमा, तिण में कला म जाणो कांय। मोह कर्म वश जीवड़ा, तिण में रह्या लपटाय ॥ ४ ॥ पुन्य पदार्थ शुभ कर्म छै, तिण री मूल न करणी चाहय। ते यथा तथ्य प्रगट करूं, से सुणज्यो चितल्याय ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

नव पदार्थों में पुन्य पदार्थ तीसरा है पुन्य को संसारी-सुख मान रहे हैं काम भोग शब्दादिक विषय जीव को पुन्योदय से मिलते हैं सो उन्हें जीव सुखमयी जान रहे हैं परन्तु पुन्य के सुख पुद्गल मयी है सो काम भोग शब्दादिक कर्मों के वश से मिष्ट लगें हैं लेकिन ज्ञानी तो ज-

हर समान जानते हैं जैसे जहर शरीर में व्यापने से नीमके पान मीठे लगते हैं वैसे ही मोहकर्म के वशीभूत जीव होके पुन्य के पुद्गलिक सुखों को अमृत समान मान रहे हैं परन्तु पुन्य के सुख कारमा याने अथिर हैं इस से कुछ भी जीवनकी गरज नहीं सरती हैं क्योंकि पुन्य के सुखों में गृधी होनेसे पाप का बन्ध होता है इसलिए कुछ करामात नहीं जानना पुन्य तो शुभ कर्म है इसको वांच्छा किंचित् भी नही करणी चाहिए, अब पुन्य पदार्थ का यथार्थ वर्णन करता हूं सो एकाग्र चित्त करके सुनो।

॥ ढाल ॥

॥ अभयाराणी कहै धायने ॥ तथा ॥ जीव मोह अनुकम्पा न आणिये ॥ एदेशी ॥ पुन्य तो पुद्गल री पर्याय छै, जीवरै आयलागै छै ताम हो लाल। ते शुभ पणै उदय हुवै जीवरै, तिणसूं पुद्गलरो पुन्य नाम हो लाल ॥ पुन्य पदार्थ ओलखो ॥ १ ॥ च्यार कर्म तो एकान्त पाप छै, च्यार कर्म छै पुन्यने पाप हो लाल। पुन्य कर्म थी जीवने, साता हुवै पण न हुवै संताप हो लाल ॥ पुन्य ॥ २ ॥ अनन्ता प्रदेश छै पुन्य तणा, ते जीवरै उदय होवै आय हो लाल। अनन्तो सुख करै जीवने, तिणसूं पुन्यरी अनन्त पर्याय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३ ॥ निर्वद्य जोग वर्तें जब जीवरै, शुभ पुद्गल लागै ताम हो लाल। त्यां पुद्गल तणा छै जुवा २, गुण प्रमाणे त्यांरा नाम हो

लाल ॥ पुन्य ॥ ४ ॥ साता वेदनी पणै आय परि-णम्यां, साता पणै उदय हुवै ताम हो लाल। ते सुख साता करै जीवनै, तिणसूं साता वेदनी दियो नाम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५ ॥ पुद्गल परिणम्यां शुभ आउषा पणै, घणो रहणो वान्छै तिणठाम हो लाल। जाणै जीविए पिण न मरीजिए, शुभ आउषो तिणरो नाम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ६ ॥ केई देवताने केई मनुष्य रे, शुभ आयुष छै पुन्य ताहि हो लाल। युगलिया तिर्यंच तेहनूं, आयुष दीसै छै पुन्य मांहि, हो लाल ॥ पुन्य ॥ ७ ॥ शुभ आयुषरा मनुष्य देवता, त्यांरी गति अनुपूर्वि शुद्ध हो लाल। केई जीव पंचेन्द्री विशुद्ध छे, त्यांरी जाति पिण निपुण विशुद्ध हो लाल ॥ पुन्य ॥ ८ ॥ शुभ नाम पणै आय परिणम्यां, ते उदय हुवै जीवरै ताय हो लाल। अनेक वाना शुद्ध हुवै तेहसूं, नाम कर्म कह्यो जिनराय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ९ ॥ पांच शरीर छै शुद्ध निरमला, तीन शरीररा निर्मल उपांग हो लाल। ते पामै शुभ नाम कर्म उदय थको, शरीर उपांग सुचंग हो लाल ॥ पुन्य ॥१०॥ पहिला संघयणना रूड़ा हाड छै, पहिलो संठाण रूडे आकार हो लाल। ते पामै शुभ नाम उदय थको, हाडते आकार श्रीकार हो

लाल ॥ पुन्य ॥ ११ ॥ भला २ बरण मिलै जीवने, गमता २ घणा श्रीकार हो लाल। ते पामै शुभ नाम उदय थको, जीव भोगवै विविध प्रकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ १२ ॥ भला २ गन्ध मिलै जीवने, गमता २ घणा श्रीकार हो लाल। ते पामै शुभ नाम उदय थकी, जीव भोगवै विविध प्रकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ १३ ॥ भला २ रस मिलै जीवने गमता २ घणा श्रीकार हो लाल। ते पामैं शुभ नाम उदय थकी, जीव भोगवै विविध प्रकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ १४ ॥ भला २ स्पर्श मिलै जीवने, गमता २ घणा श्रीकार हो लाल। ते पामै शुभ नाम उदय थकी, जीव भोगवै विविध प्रकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ १५ ॥ त्रस रो दसको छै पुन्योदय, शुभनाम उदय से जाण हो लाल। त्यांने जुदा २ करि बणवूं, कीज्यो निर्णय चतुर सुजाण हो लाल ॥ पुन्य ॥ १६ ॥ त्रस नाम शुभ कर्म उदय थकी, त्रस पणो पामै जीव सोय हो लाल। बादर शुभ नाम उदय हुयां, जीव चेतन बादर होय हो लाल ॥ पुन्य ॥ १७ ॥ प्रत्येक शुभ नाम उदय हुयां, प्रत्येक शरीरी जीव थाय हो लाल। पर्याप्ता शुभ नाम कर्म थी, जीव पर्याप्तो हो जाय हो लाल ॥ पुन्य ॥१८॥ शुभ थिर नाम कर्म उदय थकी,

शरीर ना अवयव दृढ थाय हो लाल। शुभ नाम शरीर मस्तक लगे, वय रूडा २ होयजाय हो लाल ॥ पुन्य ॥ १६ ॥ सौभाग्य नाम शुभ कर्म थी, सर्व लोकमें वल्लभ होय हो लाल। सुस्वर शुभ नाम कर्म से. स्वर कंठ मीठो होवै सोय हो लाल ॥ पुन्य ॥२०॥ आदेज वचन शुभ कर्म थी, तिणरो वचन माने सहु कोय हो लाल। जश कीर्ति शुभ नाम उदय हुवां, जश कीरत जग में होय हो लाल ॥ पुन्य ॥ २१ ॥ अगुरू लघु नाम कर्म सूं, शरीर हलको भारी नहीं लगात हो लाल। प्राघात शुभ नाम उदय थकी, आप जीतै पैलो पामै घात हो लाल ॥ पुन्य ॥ २२ ॥ उश्वाश शुभ नाम उदय थकी, श्वाशोश्वाश सुखे लेवंत हो लाल। आताप शुभ नाम उदय थकी, आप शीतल पैलो तपन्त हो लाल ॥ पुन्य ॥ २३ ॥ उद्योत शुभ नाम उदय थकी, शरीर उजवालो जान हो लाल। शुभ गई शुभ नाम कर्म सूं, हंस ज्यों चोखी चाल वखान हो लाल ॥ पुन्य ॥ २४ ॥ निर्माण शुभ नाम उदय थकी, शरीर फोडा फुणगला रहित हो लाल। तीर्थंकर नाम कर्म उदय हुवां, तीर्थंकर होवै तीन लोक वंदित हो लाल ॥ पुन्य ॥ २५ ॥ कोई युग-लियादिक तिर्यंच नो, गति ने अनुपूर्वि जाण हो

लाल। ते तो प्रकृति दीसै छै पुन्य तणी, ज्ञानी वदै ते प्रमाण हो लाल ॥ पुन्य ॥२६॥ पहिलो संघयण संठाण बरजने, च्यार संघयण च्यार संठाण हो लाल। त्यां में तो भेल दीसै छै पुन्य तणो, ज्ञानी वदै ते प्रमाण हो लाल ॥ पुन्य ॥२७॥ जे जे हाड छै पहिला संघयण में, तिण मांहिला च्यारां मांय हो लाल। त्यां ने जाबक पाप में घालिया, ते मिलतो न दीसै न्याय हो लाल ॥ पुन्य ॥ २८ ॥ जे जे आकार पहिला संठाण में, तिण मांहिला च्यारां मांय हो लाल। त्यांने जाबक पाप में घालिया, यो पिण मिलतो न दीसै न्याय हो लाल ॥ पुन्य ॥२६॥ ऊंच गौत पणै आय परिणम्यां, ते उदय आवै जीवरे ताम हो लाल। ऊंच पदवी पामै तिण थकी, ऊंच गौत छै तिणरो नाम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३० ॥ सघली न्यात थकी ऊंची न्यात छै, तिणरै कठैही न लागै छोत हो लाल। एहवा छै जे मनुष्य ने देवता, त्यांरो कर्म छै ऊंच गौत हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३१ ॥ जे जे गुण आवै जीवरै शुभ पणै, जेहवा छै जीवरा नाम हो लाल। तेहवा हिज नाम पुद्गल तणा, जीव तणै संयोग नाम ताम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३२ ॥

—:—

॥ भावार्थ ॥

अब पुन्य पदार्थ क्या है तथा जीवके किस २ तरह उदय आता है सो कहते हैं पुन्य है सो पुद्गलों की पर्याय है याने भाव पुद्गल है रूपी है जीवों के साथ होने से उन पुद्गलों का नाम पुन्य है वह जीव के शुभपण उदय होता है तब जीव को साता होती है, तात्पर्य पुन्य है सो शुभ कर्म है आठ कर्मोंमें से च्यार कर्म तो एकान्त पाप है और वेदनी आयुष नाम गोत्र यह च्यारो कर्म पुन्य पाप दोनूं हैं, अनन्त प्रदेशी पुद्गलों का खन्ध पुन्य कर्ममयी होके जीवके उदय होय तब अनन्त सुख करै इसलिये पुन्य की अनन्त पर्याय है, निर्वद्य योग्य वर्तने से अनन्त पुद्गलों का च्यार स्पर्शिया पुञ्ज जीव के लगते है उन्हीं पुद्गलों का नाम पुन्य पृथक २ गुण प्रमाण हैं सो कहते हैं, साता वेदनी पणै परिणमन करके साता पणे उदय होता है इसलिये उनका नाम साता वेदनी पुन्य कर्म है, और जो शुभ आयुष कर्म पणै परिणाम करके शुभ आयुष पणै उदय होता है उन कर्मों का नाम शुभ आयुष है, जिस आयुष में घणा काल तक रहणा चान्हे ऐसा विचारे कि मैं बड़ा सुखी हूं मेरी उमर सुखों में जा रही है किसी तरह की व्याधि नहीं है उसी आयुष का नाम शुभ आयुष है, कितने ही देवता और मनुष्यों का शुभ आयुष है तथा केई तिर्यंच युगलियों का आयुष भी पुन्य के उदय से ही जान पड़ता है, और जो पुद्गलों का पुञ्ज जीव के संग परिणमन कर उदय होनेसे अनेक तरह की वस्तु प्राप्ति करता है उनका नाम शुभ नाम कर्म है, जो शुभ आयुषवन्त मनुष्य देवता हैं उनकी गति और अनुपूर्वि भी पुन्योदय से ही हैं, पांच शरीरों के जो शुद्धि निर्मल है या तीन शरीरों के जो उपाङ्ग निर्मल है वो शुभ नाम कर्म के उदय से हैं, पहिला संघयण में जो वज्र समान मजबूत हड्डियां और पहिले संठाण में जो अच्छा खूबसूरत आकार है वह शुभ नाम कर्म पुन्योदय से हैं, तथा अच्छे २ वर्ण गन्ध रस स्पर्श जीव को मिलते हैं, सो शुभ नाम ,कर्म पुन्य के उदय से मिलते हैं, उन्हें जीव

नेक प्रकार से भोगता है, तथा पुन्य प्रकृति ४२ प्रकार से भोग में आती है सो कहते हैं।

१ साता वेदनी, अर्थात् सुखसाता वेदना-वेदनी कर्म का उदय है।

२ ऊंच गोत्र, कर्म से ऊंचे दरजे का गोत्र पाता है।

३ देवगति नाम कर्म से देवता होता है।

४ देव अनुपूर्वि अर्थात् देवगति में जाने वाले जीव को अन्त सम आती है।

५ मनुष्य गति नाम कर्म से मनुष्य होता है।

६ मनुष्य अनुपूर्वि, मनुष्य होने वाले जीव को अन्त समय आती है।

७ त्रस नाम कर्म के उदय से ये जीव त्रस होता है अर्थात् चलना हलना होता है।

८ बादर नाम कर्म के उदय जीव सूक्ष्मता को छोड़ बादर अर्थात् नेत्र द्वारा देखने लायक शरीर पाता है।

९ प्रत्येक शुभ नाम कर्म से प्रत्येक शरीर होता है अर्थात् एक शुभ शरीर में एक ही जीव होता है।

१० पर्याप्ता शुभ नाम कर्म से जीव यथा योग आहारादि पूरण परियायी होता है।

११ शुभ नाम कर्म से अच्छा नाम पाता है।

१२ सौभाग्य नाम कर्म से सौभाग्यवन्त होता है।

१३ सुस्वर नाम कर्म से स्वर याने कण्ठ मीठे होते हैं।

१४ आदेज नाम कर्म से आदेज वचनी होता है अर्थात् जिसका वचन प्रिय और प्रमाणिक होता है।

१५ जसोकीर्ति नाम कर्म से अधिक यशवन्त होता है।

१६ थिर शुभ नाम कर्म से शरीर के अवयव दृढ़ होते हैं।

१७ अगुरुलघु नाम कर्म से शरीर अधिक हलका या अधिक भारी नहीं होता है।

१८ प्राघात शुभ नाम कर्म से संग्रामादि में जय प्राप्त करता है।

१६ उश्वाश शुभ नाम कर्म से श्वाशोश्वाश अच्छी तरह नैरोग्यता से लेता है।

२० आताप शुभ नाम कर्म से आप शीतल सभावी होता है और दूसरा उन्हें देखके तपता है अर्थात् जलता है।

२१ उद्योत शुभ नाम कर्म से शरीर की क्रान्ति ज्योति उज्वल होती है।

२२ शुभगई शुभ नाम कर्म से हंस समान या गज समान अच्छी चाल होती है।

२३ निर्माण शुभ नाम कर्म से शरीर गूमड़ा फुनसियां रहित रहता है।

२४ पञ्च इन्द्रिय शुभ नाम कर्म से पांच इन्द्रिय नैरोग्यता पाता है।

२५ औदारिक शरीर शुभ नाम कर्म से मनुष्य और तीर्यंच का शरीर अच्छा होता है।

२६ वैक्रे शरीर शुभ नाम कर्म से देव शरीर तथा वैक्रे लब्धि से किया हुआ शरीर अच्छा होता है।

२७ आहारिक शरीर शुभ नाम कर्म से आहारिक लब्धि का किया हुआ शरीर अत्यन्त खूबसूरत होता है।

२८ तेजस शरीर शुभ नाम कर्म से पुद्गलों को अच्छी तरह पचाता है।

२६ कार्मण शरीर शुभ नाम कर्म से शुभ पुन्य मयी कर्मों का संगो होता है।

३० औदारिक उपाङ्ग शुभ नाम कर्म से औदारिक शरीर के हाथ पांव आदि अच्छे होते हैं।

३१ वेक्रे शरीर उपांग शुभ नाम कर्म से वेक्रे शरीर के हाथ पांव आदि उपांग अच्छे होते हैं।

३२ आहारिक उपांग शुभ नाम कर्म से आहारिक शरीर के हाथ पांव आदि उपांग अच्छे होते हैं।

३३ वज्र ऋषभ संघयण नाम कर्म से वज्र समान शरीर होता है।

३४ समचौरन्स संस्थान नाम कर्म से समचौरस आकार होता है।

३५ भलावर्ण १ भलागंध २ भलारस ३ भलास्पर्श ४ ये च्यारुं शुभ नाम कर्म से मिलता है।

३६ पञ्च इन्द्रिय तिर्यंच युगलियां का आयुष कर्म।

४० मनुष्य आयुष कर्म।

४१ देव आयुष कर्म।

४२ तीर्थंकर नाम कर्म से तीर्थंकर धर्मोपदेशक २ सुरासुर सेवक तीन लोक के पुजनीक होते हैं।

उपरोक्त साता वेदनी कर्म १ ऊंच गोत्रकर्म २ ये दोनूं तथा आयुष कर्म की ३ शुभ प्रकृति और नाम कर्म की ३७ प्रकृति सर्व ४२ प्रकार करके जीव पुन्य भोगता है, जैसी २ प्रकृति बयांलीसमें से भोगेगा उन्हें पुन्य प्रकृति जानना।

जो युगलियादिक तिर्यंचों की गति और अनुपूर्वि है सो पुन्य की प्रकृति ही है फिर निश्चय ज्ञानी कहे वह सत्य है, पहिला संघयण विना च्यार संघयणों में तथा पहिला संस्थान विना च्यार संस्थानों में भी पुन्य प्रकृति का मेल मालूम होता है निश्चय ज्ञानी कहै सो सत्य है, क्योंकि जो २ हड्डियां पहिला संघयण की हैं, वैसी बाकी च्यार संघयणों में भी होती है उन्हें एकान्त पाप प्रकृति ही नहीं कह सकते हैं, और जो आकार पहिला संस्थान का है उसी तरह के संस्थान बाकी च्यारों में हैं वो भी एकान्त पाप प्रकृति ही नहीं हैं उन्हें पाप की प्रकृति कहना यह न्याय नहीं मिलता है।

और चौथा पुन्य कर्म ऊंच गोत्र है सो उनके उदय से उच्च पदवी पाते हैं जो मनुष्य और देवता निरलान्छनी है वो स्वच्छ जाति हैं सो ऊंच गोत्र कर्म के उदय से है, तात्पर्य यह कि जो २ गुण जीव के शुभ पणे हैं वैसा ही नाम जीव का है सो जीव है और वही नाम पुद्गलों का है सो अजीव पुन्य कर्म हैं पुद्गलों के संयोग से ही जीव के अच्छे २

नाम कहे जाते हैं इससे उन पुन्यमयी पुद्गलों का नाम भी अच्छे २ ही हैं।

॥ ढाऊ तेहिज ॥

जीव शुद्ध हुवो पुद्गल थकी, तिणसूं रूड़ा २ पाया नाम हो लाल। जीवने शुद्ध कीधो छै पुद्गलां, त्यांरा पिण छै शुद्ध नाम ताम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३३ ॥ ज्यां पुद्गलां तणा प्रसंग थी, जीव वाज्यो संसार में ऊंच हो लाल। ते पुद्गल पिण ऊंचा वाजिया, तिण रो न्याय न जाणे भूंच हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३४ ॥ पदवी तीर्थंकर चक्रवर्त तणी, वासुदेव वलदेव महंत हो लाल। वलि पदवी मण्डलिक राजा तणी, सारी पुन्य थकी लहंत हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३५ ॥ पदवी देवेन्द्र नरेन्द्र नी, वलि पदवी अहमेन्द्र नी वखाण हो लाल। इत्यादिक मोटी मोटी पदवियां, सहु पुन्य तणे प्रमाण हो लाल ॥ पुन्य ३६ ॥ जे जे पुद्गल परिणम्या शुभ पणें, ते तो पुन्योदय से जाण हो लाल। त्यां सूं सुख उपजै संसार में, पुन्य रा फल यह पिछाण हो लाल ॥ पुन्य ॥३ ७॥ वाल्हा विछड़िया आयी मिलें, सयणा तणो मिलै संयोग हो लाल। पुन्य तणा प्रतापथी, शरीर में न व्यापै रोग हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३८ ॥ हाथी घोड़ा रथ पायक तणी, चौरं-

गणी सेन्या मिलै आण हो लाल। ऋद्धि वृद्धि सुखं सम्पदा मिलै, ते तो पुन्य तणै प्रमाण हो लाल॥ पुन्य॥ ३६॥ खेत्तु बत्थू हिरण सोनादिके, धनधान्य ने कुम्भीधातु हो लाल। द्विपद चौपदादि आवी मिलै, पुन्य तणै प्रताप साख्यात हो लाल॥ पुन्य॥ ४०॥ हीरा पन्ना माणक मोती मूंगिया, बलि रतना री जाति अनेक हो लाल। ते सगला मिलै छै पुन्य थकी, पुन्य बिना मिलै नहीं एक हो लाल॥ पुन्य॥ ४१॥ गमती २ विनयवन्त जे स्त्री, ते तो अपछररे उणिहार हो लाल। ते पुन्य थकी आय मिलै, बले पुत्र घणा श्रीकार हो लाल॥ पुन्य॥ ४२॥ बले सुख पामै देवतां तणा, ते पूरा कह्या नहीं जाय हो लाल। पल सागरोपम लग सुख भोगवै, ते तो पुन्य तणै पसाय हो लाल॥ पुन्य॥ ४३॥ रूप शरीर सुन्दर पणो, तिणरो बर्णादिक श्रीकार हो लाल। ते गमता लागै सर्व लोक ने, तिणरो बोल्यो गमै बारम्बार हो लाल॥ पुन्य॥ ४४॥ जे जे सुख सगला संसार ना, ते तो पुन्य तणा फल जाण हो लाल। ते कहि कहि ने कितरा कहूं। बुद्धिवन्त लीज्यो पिछाण हो लाल॥ पुन्य॥ ४५॥ ए पुन्य तणा फल बरणव्या, ते संसार लेखै श्रीकार हो लाल। त्यांने मुक्ति सुखां से

मांढीयां, ये सुख नहीं मूल लिगार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४६ ॥ पुद्गलिक सुख छै पुन्य तणा, ते तो रोगोला सुख ताय हो लाल । आत्मिक सुख छै मुक्तिरा, त्याने तो उपमा नहीं कांय लाल ॥ पुन्य ॥४७॥ पांव रोगी हुवे तेहने, खाज मीठो लागे अत्यन्त हो लाल । ज्यूं पुन्य उदय हुवां जीवने, शब्दादिक सर्व गमता लागंत हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४८ ॥ सर्प डंक लाग्यां जहर परिगम्यां, मीठा लागे नीम पान हो लाल । ज्यूं पुन्य उदय हुवां जीवने, मीठा लागै भोग प्रधान हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४९ ॥ रोगोला सुख छै पुण्य तणा, तिणमें कला म जाणो लिगार हो लाल । ते पिण काचा सुख अशाश्वता, त्यांने विणसतां न लागै वार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५० ॥ आत्मिक सुख छै शाश्वता, त्यां सुखांरो नहीं कोई पार हो लाल । ते सुख रहे सदा काल शाश्वता, त्रिहुं काले एक धार हो लाल ॥ ५१ ॥ पुन्यतणी वान्छा कियां, लागै छै एकान्त पाप हो लाल । तिणसूं दुःख पामै इण संसार में, वधतो जाय शोग संताप हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५२ ॥ जिण पुन्य तणी वान्छा करी, तिण वान्छ्या काम ने भोग हो लाल । त्यांने दुःख होसी नरक निगोद रा, वले वाल्हारो पड़सी वियोग हो लाल ॥ पुन्य ॥५३॥

पुन्य तणा सुख छै अशाश्वता, ते पिण करणी विना नहीं थाय हो लाल । निर्वद्य करणी करै तेहने, पुन्य तो सहजे लागै छै आय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५४ ॥ पुन्य री बन्छा से पुन्य नहीं नीपजै, पुन्य तो सहजे लागै छै आय हो लाल । ते तो लागै छै निर्वद्य जोग से, निरजरारी करणी सूं ताय हो लाल ॥ पुन्य ॥५५॥ भली लेश्या भला परिणाम से, निश्चय ही निरजरा थाय हो लाल । जब पुन्य लागै छै जीवरै, सहज सभावे ताय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५६ ॥ जे करणी करै निरजरा तणी, पुन्य तणी मन मांही धार हो लाल । ते करणी खोयने वापड़ा, गया जमारो हार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५७ ॥ पुन्य तो चोस्पर्शी कर्म छै, तिणरी वान्छा करै ते मूढ हो लाल । त्यां कर्म धर्म नहीं ओलख्यो, करि करि मिथ्यात्वी नी रूढ़ हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५८ ॥ जे जे पुन्य थी वस्तु मिलै तिके, त्यांने त्याग्यां निरजरा थाय हो लाल । ज्यो पुन्य भोगवै गृद्धी थको, तिणरै चीकणा कर्म बंधाय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५९ ॥ जोड़ कीधी छै पुन्य ओलखायवा, श्रीजी द्वारा मझार हो लाल । सम्वत् अठारह पचा-वने, जेठ विद नवमी सोमवार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ६० ॥ पुन्य री करणी निर्वद्य आज्ञा मझे, तिणरी

सूत्र में छै साख हो लाल। ते थोड़ी सी प्रगट करूं, सुणज्यो चित्त ठिकाणै राख हो लाल ॥ पुन्य ॥६१॥

॥ भावार्थ ॥

जीव जिस पुद्गलों से शुद्ध हुआ है उन पुद्गलों का नाम भी शुद्ध है जब कोई कहे पुद्गलों से तो जीव मलीन हुआ और हो रहा है तो पुद्गलों से जीव शुद्ध कैसे हो सकता है उसका उत्तर यह है कि संसारिक जीव सशरीरी व्यवहार नय की अपेक्षाय शुद्ध होता है जैसे कोई वस्तु भ्रष्टादि से अशुद्ध होती है तो वो स्वच्छ जल आदि पदार्थ से शुद्ध हो जाती है वैसे ही पुन्यमयी शुद्ध पुद्गलों से जीव उच्च पद पाके संसार में ऊंचे दरजे के मनुष्य या देवता गिने जाते हैं तो उनके प्रसंग से पुद्गल भी ऊंचे कहलाते हैं, सो कहते हैं, तीर्थंकर की पदवी चक्रवर्त्त की पदवी, वासुदेव की पदवी, वलदेव की, मंडलीक राजा की पदवी, तथा देवेन्द्र की पदवी, अहमिन्द्र की पदवी आदि बड़ी बड़ी पदवियां पुन्य के उदय से जीव पाता है तब जीव भी संसार में ऊंचा कहलाया और वो पुन्य मयी पुद्गल जो कि जिन्हों के उदय से ऐसा हुआ सो पुद्गल भी ऊंचा कहलाया, ज्यों २ पुद्गल जीव के शरीर पणे या इन्द्रियों के आकार पणे वा रूप क्रान्ति अतिशय पणे परिणमे हैं वो सब पुन्य के उदय से हैं, तथा प्यारे बिछड़े हुए मिलते हैं वा सज्जनों का संयोग मिलता है, निरोग शरीर पाता है, हस्ती घोड़ा रथ प्यादा कटक, च्यार प्रकार सेना, ऋद्धि वृद्धि सुख सम्पदा आदि सब पुन्य के उदय से मिलते हैं, अथवा क्षेत्र कहिये जमीन तथा जायदाद चांदी सोना धन धान्य कुम्भी धातु दोपद कहिये दासदासी तथा चौपद जानवर आदि पुन्य के प्रताप से मिलते हैं, तथा हीरा पन्ना माणक मोती आदि अनेक तरह के रत्न और अति प्रिय मनोज्ञ रूपवती स्त्री पुत्र पौत्र आदि पुन्योदय से मिलते हैं, तथा देवलोकों में देव सम्बन्धिया दिव्य प्रधान सुख हुकुमातादि भी

प्रबल पुन्योदय से पाते हैं, तात्पय जो २ संसार के सुख हैं सो सब पुन्य के उदय से हैं पुन्य बिना संसारिक सुख कुछ भी नहीं मिलता है परन्तु संसारिक सुख पुद्गलीक हैं सो सब असार और अनित्य हैं मोक्ष के आत्मिक अनोपम सुखों के आगे ये सुख कुछ भी नहीं है जैसे पांव रोगी को खुजाल अच्छी लगै, सर्प के खाये हुए जहर व्यापित को नीम के पात मीठे लगे वैसे ही जीव को कर्मों के उदय से पुन्य के पुद्गलीक सुख प्यारे लगते हैं, मगर ज्ञानी पुरुष तो पुन्य और पाप इन दोनूं ही को वेड़ी जानते हैं पुन्य पाप दोनूं ही के क्षय होने से असली सुख जो आत्मिक हैं सो प्राप्त होते हैं इसलिये पुन्य की बांच्छा नहीं करणी चाहिये पुण्य की वांच्छा करने से एकान्त पाप लगता है क्योंकि जो पुन्य की वांच्छा करी वह काम भोग बान्छे, काम भोगों की वान्छा से नर्क निगोदादि दुःख मिलते हैं इसलिये भव्य जनों को विचारणा चाहिये कि ये पुन्य के सुख अशाश्वते और असार है इनमें कुछ करामात नहीं है, ये पुन्य के सुख भी निर्वध करणी करने से मिलते हैं परन्तु इन सुखों की आशा से करणी नहीं करनी चाहिये, जब जीव के मन वचन काया के तीनों अथवा इन तीनों में से कोई एक जोग भला वर्तता है तथा भली लेश्या भला अध्यवसायों से अशुभ कर्मों की निरजरा होती है तब शुभ कर्म सहज में बंधते हैं जैसे गेहूं के साथ में खाखला स्वतः ही होता है वैसे निरजरा की करणी करने से पुन्योपार्जन होता है, और जो २ वस्तु पुन्योदय से मिलती है उन्हें त्यागने से अशुभ कर्मों की निरजरा होती है जिससे जीव निर्मल होके अनुक्रमे सर्व कर्म क्षय करके सिद्ध अवस्था प्राप्त करता है, पुन्य तो चोस्पर्शी कर्म है पुन्य को ग्रद्धीपणे से भोगने से सचिक्कण पापोपार्जन होता है, यह पुन्य पदार्थ को ओलखाने के लिये स्वामी श्री भीखनजी ने ढाल जोड़ करके कही है सम्वत् अट्टारह सह पचपन वर्षे जेठ विद नवमी सोमवार को श्री नाथद्वारा शहर में कही है, सो इसका भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार किया है इसमें जो कोई अशुद्धार्थ आया हो उसका मुझे

वारम्बार मिच्छामि दुक्कडं है, अब पुन्य किस तरह से और किस करणी के करने से होता है सो कहते हैं।

—:—

॥ दोहा ॥

नव प्रकारे पुन्य नीपजै, ते करणी निर्वद्य जाण। बयांलीस प्रकारे भोगवै, तिणरी बुद्धिवन्त करज्यो पिछाण ॥ १ ॥ पुन्य निपजै तिण करणी मभे, निरजरा निश्चय जाण, जिण करणी में जिण आगन्यां, तिणमें शंका मत आण ॥ २ ॥ केई साधू बाजै जैनरा, त्यां दीधी जिन मार्ग ने पूठ। पुन्य कहै कुपात्र ने दियां, त्यांरी गई अभ्यन्तर फूट ॥ ३ ॥ काचो पाणी अणगल पावै तेहने, कहछै पुन्य ने धर्म। ते जिन मार्ग थी वेगला, भूला अज्ञानी भ्रम ॥४॥ साधु विना अनेरा सर्वने, सचित अचित दियां कहै पुन्य। वलि नाम लेवै ठाणा अङ्गरो; ते पाठ विना अर्थ छै सून्य ॥ ५ ॥ किणहिक ठाणा अङ्ग में, ये घोल्यो छै अर्थ विपरीत। ते सघला ठाणांग में नहीं, जोय करो तहतीक ॥६॥ पुन्य निपजै छै किण विधे, ते जोवो सूत्र रे मांय। श्रीवीर जिनेश्वर भाषियो, ते सुणज्यो चित्त ल्याय ॥ ७ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब पुन्यमयी शुभ कर्म जीव के किस कर्तव्य के करने से लगते हैं सो कहते हैं, पुन्य नव प्रकार से उपार्जन होता है वह करणी निर्वद्य है, उसे जीव बयालीस प्रकार से भोगता है सो वर्णन पहली ढाल में किया ही है, बुद्धिवान जनों को निष्पक्ष होके पुन्य और पुन्य की करणी की पहिचान करनी चाहिये, महानुभावों जिस करणीसे पुन्य निपजता है उस करणी से अशुभ कर्मों की निरजरा निश्चय ही होती है और उसी करणी करने की श्रीजिनेश्वर देवों की आज्ञा है परन्तु पुन्यके लिये करणी करने की आज्ञा नहीं है इसमें किञ्चित भी शङ्का नहीं रखनी चाहिये, कितने ही साधु जैनी नाम धरा के जिन कथित मार्ग से विमुख होके कुपात्रों को देने में भी पुन्य प्ररूपते है उनकी ज्ञानमयी चक्षु मिथ्यात्व मयी मोतियाबिन्द से आच्छादित हो रहे हैं सो कहते हैं सचित पानी जो अप्पकाय के स्थावर एक बिन्दु में असंख्या जीव हैं और उसमें वन-स्पति के अनन्ते जीवों की नियमा है वो किसी को पाने से धर्म और पुन्य होता है ऐसी कहने वाले अज्ञानी भ्रम में भूले हुए हैं। कई कहते हैं साधु को तो देने से तीर्थंकरादि पुन्य प्रकृति का बन्ध होता है और साधु बिना सब को देने से अनेरी पुन्य प्रकृति बंधती है ऐसा श्री ठाणांग सूत्र मे कहा है सो ऐसा कहना मिथ्या है श्री ठाणाअङ्ग सूत्र के मूल पाठ में तो ऐसा कहा ही नहीं है, किसी २ ठाणाअङ्ग की प्रति में अर्थ में उपरोक्त लिख्या है सो भी सब ठाणाअङ्गकी में नहीं है इसकी तहकीक करने से मालूम हो जायगा कि विवेकी जीवों को खयाल करना चाहिये कि जीव हिन्सा करके साता उपजाने से धर्म और पुण्य कैसे होगा, अब शास्त्रों में पुन्य की करणी का वर्णन कहा है सो कहते हैं।

॥ ढाल ॥

॥ श्रावक श्रीवर्द्धमानरा रे लाल एदेशी ॥

पुन्य निपजै शुभजोग सूं रे लाल, ते शुभ जोग जिन आज्ञा मांय हो भविकजन। ते करणी छै निर-जरा तणी रे लाल, पुन्य सहजे ही लागै आय हो भविकजन ॥ पुन्य निपजै शुभजोग सूं रे लाल ॥ १ ॥ जे करणी करे निरजरा तणी रे लाल, तिणरी आज्ञा दे जगनाथ हो। भ। ते करणी करतां पुन्य निपजे रे लाल, ज्यों खाकलो हुवै गेहूं री साथ हो ॥ भ ॥ पु ॥ २ ॥ पुन्य निपजे तिहां निरजरा हुवै रे लाल, ते करणी निरवद्य जाण हो। भ। सावद्य करणी से पुन्य नहीं निपजै रे लाल, ते सुणज्यो चतुर सुजाण हो ॥ भ ॥ पु ॥ ३ ॥ लांबो आऊपो बंधै तीन बोल सूं रे लाल, ते आऊपो छै पुन्य मांय हो। भ। हिन्सा न करै प्राणी जीव री रे लाल, बोलै नहीं मूसा वाय हो ॥ भ ॥ पु ॥ ४ ॥ तथा रूप श्रमण निग्रन्थने रे लाल, देवै प्रासुक निरदूषण च्यारूं आहार हो। भ। यां तीन बोलां से ए पुन्य निपजै रे लाल, ठाणांग तीजा ठाणा मझार हो ॥ भ ॥ पु ॥ ५ ॥ हिन्सा कियां झुठ बोलियां रे लाल, वलि साधां ने देवै अशुद्ध आहार हो। भ। तिणसूं अल्प आऊषो

बंधै तेहने रे लाल, ते आऊषो पाप मझार हो ॥ भ ॥ पु ॥ ६ ॥ हिन्सा कियां झुठ बोलियां रे लाल, साधां ने हेलै निन्दै ताय हो । भ । आहार अमनोज्ञ अप्रिय दियां रे लाल, अशुभ लांबो आऊषो बंधाय हो ॥ भ ॥ पु ॥ ७ ॥ शुभ लांबो आऊषो बंधै इण विधे रे लाल, ते आऊषो छै पुन्य मांय हो ॥ भ ॥ हिन्सा न करै प्राणी जीवनी रे लाल, वले बोलै नहीं मूसा वाय हो ॥ भ ॥ पु ॥ ८ ॥ तथा रूप श्रमण निग्रन्थ ने रे लाल, करै वन्दना ने नमस्कार हो । भ । प्रीतकारी बहिरावै च्यारूं आहार ने रे लाल, ठाणा अंग तीजा ठाणा मझार हो ॥ भ ॥ पु ॥ ६ ॥ योहिज पाठ भगवती सूत्र में रे लाल, पांचमें शतक पञ्चमें उद्देश हो । भ । शंका हुवै तो पूछ निर्णय करो रे लाल, तिणमें कूड़ नहीं लवलेश हो ॥ भ ॥ पु ॥ १० ॥ वन्दना करतां खपावै नीच गोत ने रे लाल, ऊंच गोत बंधै वलि ताहि हो । भ । ते वन्दना करवा री जिन आगन्या रे लाल, उत्तराध्ययन गुणतीसमा मांहि हो ॥ भ ॥ पु ॥ ११ ॥ धर्म कथा कहितां थकां रे लाल, बांधै कल्याणकारी कर्म हो । भ । उत्तराध्ययन गुणतीसमें अध्ययन में रे लाल, तिहां पिण निरजरा धर्म हो ॥ भ ॥ पु ॥१२॥

बीस बोलां करी जीवरै रे लाल, कर्मां री कोड़ खपाय हो । भ । बांधै तिर्थंकर नाम कर्म ने रे लाल, ज्ञाता आठमा अध्ययन मांय हो ॥ भ ॥ पु ॥ १३ ॥ सुबाहु कुमर आदि दश जणा रे लाल, त्यां साधां ने अशनादिक वहिराय हो । भ । त्यां बांध्यो आऊषो मनुष्य नूं रे लाल, श्री विपाक सूत्र रे मांय हो ॥ भ ॥ पु ॥ १४ ॥ प्राण भूत जीव सत्व ने रे लाल, दुःख न दे उपजावै शोग नाहिं हो । भ । अझुरणियां ने अटीप्पणियां रे लाल, अपिट्टणियां प्रताप न दे ताहि हो ॥ भ ॥ पु ॥ १५ ॥ ए छहुं प्रकारे बांधै साता वेदनी रे लाल, उलटा कियां असाता वंधाय हो । भ । इम भगवती शतक सातमें रे लाल, छट्ठै उद्देशै कह्यो जिनराय हो ॥ भ ॥ पु ॥ १६ ॥ करकस वेदनी वंधै जीव रै रे लाल, अठारह पाप सेव्यां वंधाय हो । भ । नहीं सेव्यां वंधै अकरकस वेदनी रे लाल, भगवती सातमा शतक छट्ठा मांय हो ॥ भ ॥ पु ॥१७॥ कालो दाई पूछ्यो भगवान ने रे लाल, सूत्र भगवती में रैंस हो । भ । कल्याणकारी कर्म किण विध वंधै रे लाल, सातमें शतक दशमें उद्देश हो ॥ भ ॥ पु ॥१८॥ अठारह पाप स्थानक नहीं सेवियां रे लाल, कल्याण-कारी कर्म वंधाय हो । भ । अठारह पाप स्थानक सेवै

तेहसूं रे लाल, बंधै अकल्याण कारी कर्म आय हो । भ । पु ॥ १६ ॥ प्राणभूत जीव सत्वने रे लाल, बहु शब्दे च्यारूं मांहि हो । भ । त्यांरी करै अनु-कम्पा दया आणिने रे लाल, दुःख सोग उपजावै नाहिं हो । भ । पु ॥ २० ॥ अझुरणियां ने अपिट्ट-णियां रे लाल । अटिप्पणिया ने अप्रताप हो । भ । यां चौदा बोलांसे बंधै साता बेदनी रे लाल, उलटा कियां असाता पाप हो । भ । पु ॥२१ ॥ महा आरंभ महा परिग्रही रे लाल, वलिकरै पचेन्द्रीनी घात हो । भ । मद्य मांस तणुं भक्षण करै रे लाल, तिण पापसे नर्कमें जात हो । भ । पु ॥२२॥ माया कपट गूढ़ माया करै रे लाल । वले बोलै मृषा वाय हो, । भ । कूड़ा तोला ने कूड़ा मापा करै रे लाल, तिण पापथी तिर्यंच थाय हो । भ । पु ॥ २३ ॥ प्रकृतिरो भद्रिक वनीत छैरे लाल, दयाने अमच्छर भाव जाण हो । भ । तिणसे बांधै आऊषो मनुषनो रे लाल, तेकरणी निरवद्य पिछाण हो । भ पु ॥ २४ ॥ पालै सराग पणै साधू पणों रे लाल । वले श्रावकरा व्रत बारहो । भ । बाल तपस्याने अकाम निरजरा रेलाल, त्यांसूं पामै सुर अवतार हो । भ । पु ॥ २५ ॥ काया सरल ने भाव सरल सूं रे लाल, वले भाषा सरल

पिछाण हो । भ । जेहवो करै तेहवो मुखसूं कहै रे लाल, तिणसे शुभनाम कर्म वंधै आण हो। भ। पु ॥ २६ ॥ ये च्यारूं ही बोल वांका वर्तियां रे लाल, तिणसूं वंधै अशुभ नाम कर्म हो । भ । ते सावद्य करणी छै पापरी लाल, तिणमें नहीं निरजरा धर्म हो । भ । पु ॥ २७ ॥ जाति कुल वल रूपनूं रे लाल, तप लाभ सूत्र ठकुराय हो । भ । ए आठूं हीं मदने करै नहीं रे लाल, तिण थी ऊंच गोत वंधाय हो । । भ । पु ॥२८॥ ये आठूं ही मद कियां थकां रे लाल, वांधै नीच गोत कर्म हो । भ । ते सावद्य करणी छै पापरी रे लाल, तिणमें नहीं पुन्यने धर्म हो । भ । पु ॥ २६ । ज्ञानावरणी ने दर्शणावरणी रे लाल , वले मोहनीयने अन्तराय हो । भ । ये चारूं एकान्त पापकर्म छै रे लाल, त्यांरो करणी नहीं आज्ञा मांय हो । भ । पु ॥ ३० ॥ वेदनी आयुषो नाम गोत छै रे रे लाल, ए च्यारूं ही कर्म पुन्य पाप हो । भ । तिण में पुन्यरी करणो निरवद्य कही रे लाल, तिणरी आज्ञा दे जिन आप हो । भ । पु ॥ ३१ ॥ यह भगवती शतक आठ में रे लाल, नवमा उद्देशा मांय हो । भ । पुन्य पाप तणी करणा तणो रे लाल, जाणै समदृष्टि न्याय हो । भ । पु ॥ ३२ ॥ करणी करि

निहांणो नहीं करै रे लाल, चोखा परिणामा समकितवन्त हो । भ । समाध जोग बरतै तेहनां रे लाल, क्षमा करि परीषह क्षमंत हो । भ । पु ॥३३॥ पांचूंही इन्द्रियां बश कियांरे लाल । बले माया कपट रहित हो । भ । अपासत्थापणूं ज्ञानादिक तणूं रे लाल, श्रमण पणूं छै सहित हो । भ । पु ॥ ३४ ॥ हितकारी प्रबचन आठूं तणूं रे लाल, धर्म कथा कहै बिस्तार हो । भ । यां दश बोलां बंधै जीव रै रे लाल, कल्याणकारी कर्म श्रीकार हो । भ । पु ॥ ३५ ॥ ते कल्याणकारी कर्म पुन्य छै रे लाल, तिणरी करणी निरवद्यजाण हो । भ । ठाणा अंग दशमें ठाणै कह्या रे लाल, ते जोय करज्यो पिछाण हो । भ । पु ॥३६॥

॥ भावार्थ ॥

शुभ योग वर्तने से पुन्योपार्जन होता है सो शुभ योग श्रीजिन आज्ञा के मांहि है उन्हीं शुभ योगों से अशुभ कर्मों की निरजरा होती है और पुन्य जो शुभ कर्म है वो बंधते हैं, जिस कर्त्तव्य की श्रीजिनेश्वर देव आज्ञा दें उस निर्वद्य कर्तव्य के करने से जीव देशतः निर्मल होके पुन्योपार्जन करता है. परन्तु सावद्य करणी जो जिनाज्ञा बाहिर है उससे पुन्य कदापि नहीं होता । ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अन्तराय ये च्यार कर्म तो पाप ही है, और नाम गोत्र वेदनी आयुष्य ये च्यार कर्म पुन्य पाप दोनूं हैं सो कैसे बंधते हैं उनका वर्णन शास्त्रों में कहा सो कहते हैं । पुन्यमयी दीर्घ आयुष कर्म तीन प्रकार से बंधता है श्री ठाणा अङ्ग सूत्र के तीसरे ठाणे कहा है हिन्सा न करने से १ झूठ न बोलने से

२ तथा रूप श्रमण निर्ग्रंथ को प्रासूक निर्दूषण च्यार प्रकार का आहार देने से दीर्घायु कर्म बंधता है, और हिन्सादि तीनों कर्तव्य से अल्प आयु कर्म बंधता है सो पापमयी है, तथा शुभ दीर्घायु भी हिन्सा न करने से १ झूठ न बोलने से २ तथा रूप साधू मुनिराज को वंदना नमस्कार करने से प्रीतकारी च्यारूं आहार वहराने से ३, और अशुभ दीर्घायु कर्म हिन्सादि तीनों कर्त्तव्यों के करने से बंधता है, ऐसा ही पाठ श्रीभगवती के पांचमें उद्देशे में भी कहा है। गोत्र कर्म के दो भेद हैं एक तो ऊंच गोत्र सो पुन्य है और दूसरा नीच गोत्र वो पाप है, साधू मुनिराजों को वंदना करने से नीच गोत्र को खपाते हैं और ऊंच गोत्र बाधते हैं श्री उत्तराध्ययन ३६ में अध्ययन में कहा है, तथा धर्म कथा कहने से कल्याणकारी कर्म बंधते हैं सो गुणतीसमां अध्ययन में कहा है, ऊंच गोत्र बंधने का कारण वंदना करना है, कल्याणकारी कर्म का कारण धर्म कथा कहना है इन दोनूं ही कर्तव्यों की जिन आज्ञा है और निरजरा धर्म है। बीस बोल करिके जीव पूर्व संचित कर्मों की कोड़ि खपा के तीर्थंकर नाम कर्म बांधता है ऐसा श्री ज्ञाता सूत्र के आठमें अध्ययन में कहा है। श्री सुख विपाक सूत्र में अधिकार है कि दश जनों ने साधू मुनिराजों को शुद्ध निर्दोष आहार देने से प्रतिसंसार करिके मनुष्य का आयुष बांधा है सो पुन्य है। तथा श्री भगवती सूत्र के सातमा शतक के छट्ठे उद्देशे गौतम स्वामी ने श्री भगवान से पूछा है हे प्रभू साता वेदनी कर्म कैसे बंधता है तब भगवन ने फरमाया है प्राण भूत जीव सत्व को दुःख न देने से, शोग न उपजाने से, न झूराने से, न रुलाने से, न पीटने से, तथा प्रतारना न देने से, साता वेदनी कर्म बंधता है और दुःख देने से यावत प्रतापना उपजाने से असाता वेदनी कर्म बंधता है। तथा इसही उद्देशे में कहा है अट्ठारह पाप सेने से करकश वेदनी और न सेने से अकरकश वेदनी बंधता है। कालोदाई मुनि श्री भगवान से प्रश्न किया है कल्याणकारी और अकल्याणकारी कर्म जीव कैसे बांधता

है · तब भगवन्त ने उत्तर फरमाया है कि अट्ठारह पापस्थानक सेने से अकल्याणकारी कर्म और न सेने से कल्याणकारी कर्म बंधता है श्री भगवती सूत्र में अधिकार है, कल्याणकारी कर्म पुन्य है और अकल्याण-कारी कर्म पाप है। आयुष्य कर्म च्यार प्रकार का है—नारकी का, तिर्यंच का, मनुष्य का, देवता का, जिसमें नारकी तिर्यंच का आयुष्य तो पाप है और मनुष्य देवता का आयुष्य पुन्य है सो च्यारों प्रकार का आयुष्य कर्म कैसे बांधता है वो अधिकार श्री भगवती सूत्र में कहा है सो कहते हैं—

१—महा आरंभ से, महापरिग्रह से, पंचेन्द्री की घात करने से, मद्य मांस भोगने से, नारकी का आयुष्य बंधता है।

२—मायाचार से, गूढ़ माया कपट करने से, झूठ बोलने से, असत्य बोलने से या असत्य नापने से, तिर्यंच का आयुष्य बंधता है।

३—भद्रिक प्रकृति से, सुवनीतपणे से, जीवों की दया से, अमत्सर भाव से मनुष्य का आयुष्य बंधता है।

४—सराग संयम पालने से, श्रावक पणा पालने से, बाल तपस्या करने से, अकाम निरजरा से, देवता का आयुष्य बंधता है।

तथा कहा है काया का सरल पणे से भाषा का सरल पणे से, जैसा करै वैसा कहने वाला ऐसा सत्यवादी पणे से, शुभनाम कर्मोंपार्जन होता है, और इन्ही बोलों को उलटे करने से अशुभ नाम कर्मोंपार्जन करता है।

जाति का, कुल का, बल का, रूप का, तप का, लाभ का, सूत्र का, ठकुराई का, इन आठों का मद याने अभिमान करने से नीच गौत्र कर्म बंधता है और न करने से ऊंच गौत्र कर्म बंधता है। तात्पर्य यह कि ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहोनीय और अन्तराय यह च्यार कर्म तो एकान्त पाप कर्म हैं इनकी करणी तो सावद्य है तथा आज्ञा बाहर है। और वेदनी नाम गौत्र आयुष्य ये च्यार कर्म पुन्य पाप दोनूं हैं जिस

में पुन्य की करणी तो निर्वद्य और आज्ञा माँहि है, पाप की करणी आज्ञा बाहिर है, यह पुन्य पाप की करणी का अधिकार श्री भगवती सूत्र के आठमां शतक के नवमां उद्देशा में विस्तार पूर्वक कहा है जिस का न्याय समदृष्टि जान रहे हैं। करणी करके पुन्य के सुखों का निधान न करें। भले परिणाम समजोगवर्ते, परीषह उपसर्ग समपरिणाम से क्षमें, पांचों इन्द्रियों को वश करे, माया कपट रहित हो, ज्ञान की उपासना करें, श्रमण पणा सहित हो, जिस को आठ प्रवचन माताके हितकारी हो, सविस्तार धर्म कथा कहै, इन दश बोलों से कल्याणकारी कर्म बंधता है यह करणो निरवद्य है, और यही बोल उलटा करणी से अकल्याणकारी कर्म बंधता है सो करणो सावद्य है, ये दशों बोल ठाणांग में कहे हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

अन्न पुराय पाण पुराय कह्यो रे लाल। लयण सयण वस्त्र जाण हो। भ। मन वचन काया पुन्य छै रे लाल, नमस्कार नवमूं पिछाण हो। भ। ॥३७॥ पुन्य बंधै यह नव प्रकारसे रे लाल, ते नवूं ही निरवद्य जाण हो। भ। नव बोलां में जिनजी री आगन्यारे लाल, तिणरी बुद्धिवंत करिज्यो पिछाण हो। भ। पु॥ ३८ ॥कोई कहै नव बोल समचय कह्या रे लाल, सावद्य निरवद्य न कह्या ताम हो। भ। सचित अचित पिण नहीं कह्यारे लाल, पात्र कुपात्र नहीं नाम हो। भ। पु॥ ३६ ॥ तिणसूं सचित अचित दोनूं कह्यारे लाल; पात्र कुपात्र कह्या ताम हो। भ।

पुन्य निपजै दीधां सकल नेरे लाल, ते झूंठ बोलै सूत्रनूं ले २ नाम हो । भ । पुन्य ॥ ४० ॥ कहे साधु श्रावक पात्र ने दियां रे लाल, तीर्थंकर नामादि पुन्य थाय हो । भ । अनेरा ने दान दियां थकां रे लाल, अनेरी पुन्य प्रकृति बंधै आय हो । भ । पु ॥ ४१ ॥ इम कही नाम लेवै ठाणा अंगनूं रे लाल, नवमा ठाणा में अर्थ दिखाय हो । भ । ते अर्थ अणहुंतो घालियो रे लाल, तिणरी भोलांने खबर न कांय हो । भ । पु ॥ ४२ ॥ ज्यो अनेराने दियां पुन्य निपजै रे लाल, जब टलियो नहीं जीव एक हो । भ । कुपात्र ने दियां पुन्य किहां थको रे लाल, थें समझो आणि विवेक हो । भ । पु ॥ ४३ ॥ पुन्यारा नव बोल समुचै कह्या रे लाल, उण ठामें तो नहीं छै निकाल हो । । भ । वंदना व्यावच पिण समुचै कह्यारे लाल, ते बुद्धिवंत लीज्यो संभाल हो । भ । पु ॥ ४४ ॥ वंदना करतां खपावै नींच गौतने रे लाल, बले ऊंच गौत बंधाय हो । भ । तीर्थंकर गौत बांधै व्यावच कियां रे लाल, ते पिण समुचै बोल कह्या छै ताय हो । भ । पु ॥ ४५ ॥ तीर्थंकर गौत बंधै बीस बोल से रे लाल, त्यां में पिण समुचै बोल अनेक हो । भ । समुचै बोल घणां छै सिद्धान्त में रे लाल, ते कुण समझै

विगर विवेक हो । भ । पु ॥ ४६ ॥ ज्यो सकल ने दियां अन्न पुन्य निपजै रे लाल, तो नवौं हो समुचै इम जाण हो । भ । हिव निर्णय कहूं छूं तेहनूं रे लाल. ते सुणज्यो चतुर सुजाण हो । भ । पु ॥४७॥ अन सचित अचित दीधां सकल ने रे लाल, ज्यो पुन्य निपजे छे तास हो । भ । तो इमहिज पुन्य पाणीं दियां रे लाल, लेण सैण वस्त्र पुन्य आम हो । भ । पु ॥ ४८ ॥ इमहिज मन पुन्य समुचै हुवै रे लाल, तो मन भूंडो वरतायां हीं पुन्य थाय हो । भ। वचन पिण समुचे हुवे रे लाल, तो भूंडो बोल्यां हीं पुन्य बंधाय हो । भ । पु ॥ ४६ ॥ काया पुन्य पिण समुचै हुवै रे लाल, तो काया सुं हिन्सा कियां पुन्य होय । भ । नमस्कार पुन्य समुचे हुवै रे लाल, तो सकल ने नम्यां पुन्य जाय हो । भ । पु ॥ ५० ॥ मन वचन काया माठा वर्तियां रे लाल, ज्यो लागै छै एकान्त पाप हो । भ । तो नवूं हीं बोल इम जाणज्यो रे लाल, उथप गई समुचैरो थाप हो । भ । पु ॥५१॥ मन वच काया सूं पुन्य नीपजै रे लाल, ते निरवद्य वर्त्यां होय हो । भ । तो नवूं हीं बोल इम जाणज्यो रे लाल, सावद्य में पुन्य नहीं कोय हो । भ । पु । ॥ ५२ ॥ नमस्कार अनेराने कियां रे लाल, ज्यो लागै

छै एकान्त पाप हो । भ । तो अन्नादिक सचित दीधां थकां रे लाल, कुण करसी पुन्यरी थाप हो । भ । । पु । ॥५३॥ निरवद्य करणी सुं पुन्य नीपजै रे लाल, सावद्य सूं लागै छै पाप हो । भ । ते सावद्य निरवद्य किम जाणिए रे लाल, निरवद्य में आज्ञा दे जिन आप हो । भ । पु ॥ ५४ ॥ अन्नपाणी पात्र ने बहिराविया रे लाल, लैण सैण बस्त्र बहराय हो । भ । त्यांरी श्रीजिन देवै आगन्या रे लाल, तिण ठामे पुन्य बंधाय हो । भ । पु ॥ ५४ ॥ अन्न पाणी अनेरा ने दियां रे लाल, लैण सैण बस्त्र दे ताय हो । भ । तिणरो देवै नहीं जिन आगन्या रे लाल, तिणसूं पुन्य किहांथी बंधाय हो । भ । पु ॥ ५५ ॥ सुपात्रने दियां पुन्य नीपजै रे लाल । ते करणी जिन आज्ञा मांय हो । भ । अनेरांने दियां पुन्य किम निपजै रे लाल, तिणरी जिन आज्ञा नहीं कांय हो । भ । पु ॥ ५६ ॥ ठाम २ सूत्रमें देखल्यो रे लाल, निरजरा ने पुन्यरी करणी एकहो । भ । पुन्य हुवै तिहां निरजरा हुवै रे लाल, तिहां जिन आज्ञा छै विशेष हो । भ । पु ॥५७॥ नव प्रकारे पुन्य नीपजै रे लाल, ते भोगवै बयांलीस प्रकार हो । भ । पुन्य उदय हुयां जीवरै रेलाल, सुखसाता पामें संसारहो ।भ।पु॥५८॥ इण पुन्य तणा सुख-

कारमा रे लाल, विणसतां नहीं लागै वारहो। भ।
तिणरी वान्छा नहीं कीजिये रे लाल, ज्यूं पामो भव
जल पार हो। भ। पु॥५६॥ जिण पुन्य तणीं वान्छा
करी रे लाल, तिण वान्छ्या कामने भोग हो। भ।
संसार वधै कांम भोग सूं रे लाल, पामें जन्म मरणने
शोग हो। भ। पु॥ ६०॥ वान्छा तो कीजै एक
मुक्तिरी रे लाल, और वान्छा न कीजे लिगार हो। भ।
जिण पुन्य तणी वान्छा करी रे लाल, ते गया जमारो
हार हो। भ। पु॥ ६१॥ सम्वत् अठारह तयांलीसमें
रे लाल, कातिक सुदि चौथ गुरुवार हो। भ। पुन्य
निपजै ते ओलखायवा रे लाल, जोड़ कीधी कोठारया
मझार हो। भ। पु॥ ६२॥ इति पुन्य पदार्थ॥

॥ भावार्थ ॥

पुन्य नव प्रकार से बंधता है और जीव उसे बयांलीस प्रकार से भोगता है पुन्य बंधने के नवबोल श्री ठाणांग के नव में ठाणे कहे हैं परन्तु बुद्धिमान जनों को विचारणा चाहिए कि ये नव बोल कौनसे हैं और इन से पुन्य किस तरह बंधता है, कोई कहते हैं नव बोल समुचै कहे हैं सावद्य निरवद्य या सचित अचित और पात्र कुपात्र का नाम उस जगह नहीं कहा है इसीलिए सचित अचित दोनूं तरह का अन्न सब को देनेसे पुन्य होता है, साधू श्रावक को देनेसे तो तीर्थङ्करादि पुन्य प्रकृति का बंध है और बाकी को देनेसे अनेरी पुन्य प्रकृति बंधती है, ठाणा अंग सूत्र में लिखा है ऐसा कहते हैं, जिसका उत्तर यह है कि ठाणा अंग सूत्र के मूल पाठ में तो कहीं भी ऐसा नहीं कहा

है, किसी २ प्रति में अर्थ करने वालोने ऐसा अर्थ लिखा है सो जिन मत से विरुद्ध है, अव्वल तो समुचै पाठसे यह अर्थ नहीं हो सकता कि अन्न पुन्ने कहा तो अन्न सचित हो या अचित हो लेने वाला सुपात्र हो या कुपात्र हो अन्न के देनेसे ही पुन्योपार्जन होता है यदि अन्न पुन्ने का उपरोक्त अर्थ समझा जाय तो उत्तराध्ययन में कहा है वंदना करनेसे नीच गोत्र को क्षय करिके ऊंच गोत्र को बांधे, तो फिर इस जगह भी ऐसा समझना चाहिए कि सबको वंदना करने से नीच गोत्र क्षय होके ऊंच गौत्र का बंध होता है क्योंकि उस जगह भी किसी का नाम नहीं कहा है, और वैयावच करनेसे तीर्थङ्कर गोत्र बंधै ऐसा कहा है तो इसका अर्थ भी यही हुआ कि सबकी वैयावच करनेसे उत्कृष्ट भांगे तीर्थङ्कर गौत्र बंधता है, किन्तु नहीं नहीं नाम न आनेसे ये अर्थ कदापि नहीं हो सकता है, यही क्यों समुचै बोलतो शास्त्रों में अनेक आये हैं परन्तु निरविवेकी जीवों को यथा तथ्य समझ नहीं पड़ती है इसलिए अर्थ की जगह अनर्थ करके जिन आज्ञा बाहर का कर्तव्य से धर्म पुन्य प्ररूपते हैं, परन्तु विवेकी जीवों को विचारणा चाहिए कि ज्यो अन्न सचित अचित सकल को दिये पुन्य हो तो ऐसे ही पानी सब को पाये पुन्य हुआ तथा ऐसे ही लैण कहिए जगह जमीन लैण कहिए सयन पाटबाजोटा आदि, वत्थ कहिए वस्त्र भी सकल को दिये पुन्य हुआ तो सकल में वेस्या कसाई आदि सब जीव आगये तो फिर उनकी श्रद्धासे तो किसी को किसी तरह की वस्तु देनेसे पुन्य ही होता है, किन्तु देनेसे पाप तो होता ही नहीं है सब को देनेके परिणाम अच्छे ही हैं तो फिर यही क्यों जैसा अन्न पुन्य समुचै है वैसा ही मन वचन काया पुन्य भी समुचै ही है मन भला प्रवर्त्तै तो भी पुन्य और बुरा प्रवर्त्तै तो भी पुन्य वचनसे प्रियकारी कहै तो भी पुन्य, और कुवचन गाली गलोच आदि बोलें तो भी पुन्य, और काया भली प्रवर्तावे तो पुन्य तथा बुरी प्रवर्तावे तो भी पुन्य फिर

काया से जीव न मारे तो पुन्य और मारे तो पुन्य, क्योंकि उस जगह तो भली बुरी का नाम नहीं कहा है सिर्फ इतना ही कहा है काया पुन्ने, यही क्यों फिर तो नमस्कार पुन्य भी ऐसे हो समझना, कि कुत्ते कव्वे वेश्या कसाई आदि सब जीवों को नमस्कार करने से पुन्यो-पार्जन होता है। परन्तु नहीं २ ऐसा नहीं समझना चाहिए, सतपुरुष और गुणी जनों को ही वंदने से पुन्य होता है निरगुणी कुपात्रों को वंदना करने से तो पाप ही होगा, ऐसे ही मन वचन काया भली घरे निरवद्य कर्त्तव्य में वरतनेसे पुन्य होता है परन्तु सावद्य जिन आज्ञा बाहर का मन वचन कायाके जोग वरताने से पुन्य बंध नहीं होता पाप ही का बंध है, नवों ही बोलोंको इसी माफिक समझना चाहिए। जैसे मन वचन कायाके जोग सावद्य वरतानेसे पुन्य नहीं वैसे ही अन्न पानी सचित देनेसे पुन्य नहीं। जिस कार्य की जिन आज्ञा है वोह कार्य निर्वद्य है और जिस कार्यको जिन आज्ञा नहीं वो कार्य सावद्य है, सावद्य कार्यसे कदापि पुन्य नहीं बंधता है सावद्य से तो पाप ही का बंध है, नवों ही प्रकार जिन आज्ञा माहि और निरवद्य हैं, साधू मुनिराजों को कल्पै सोही वस्तु इस जगह बताई है यदि सकल जीवों को देने से पुन्योपार्जन होता तो परिग्रह पुन्ने भी कहते आभूषण तथा गाय भैंस आदि अनेक वस्तुओंका नाम बतलाते, परन्तु बतलावें कैसे ! परिग्रहादि अनेक वस्तुओं के देने से पुन्य कदापि नहीं होता है साधू विना संसारी जीवों को देना लेना संसारिक व्यवहार तथा सावद्य कर्त्तव्य है जिसकी श्रीजिनेश्वर तथा पंच महाव्रतधारी शुद्ध साधू आज्ञा नहीं देते हैं और आज्ञा बाहर के कर्त्तव्यों से धर्म पुन्य नहीं होता है, जिन आज्ञा बाहर के दान से तो पाप ही होता है, संसार में संसारी जीव परस्पर अनेक तरह से देन लेन करते करते हैं परन्तु संसारिक मार्ग है मुक्ति मार्ग नहीं है। प्रियवरो ! पुन्य है सो शुभ कर्म है और कर्म है सो मुक्ति पद को बाधा देने वाला है पुन्य पाप दोनूं को

क्षय करने से मुक्ति पद मिलता है, पुन्य के सुख तो कारमे हैं विनाश होते देर नहीं लगती है इसलिये यदि ज्यो तुम्हें भवदधि से पार उतरना है तो पुन्य की वांछा मत करो निकेवल मोक्षामिलाषी होके निरवद्य करणी करो जिससे पूर्व संचित पाप कर्मों की निरजरा होके सिद्धपद जलद् पावोगे, सम्वत् अठारह सह तयांलीस की साल में कार्तिक सुदी चौथ गुरुवार को पुन्य निपजने का उपाय ढाल जोड़ के स्वामी श्री भीखनजी मेवाड़ देशान्तर्गत कोठारया ग्राममें कहा। इति पुन्योपारजनकी करणी की ढाल का भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धयानुसार किया है इसमें कोई अशुद्धार्थ आया हो उसका मुझे त्रिविध २ मिच्छामि दुक्कडं है।

॥ अथ चतुर्थम् पाप पदार्थम् ॥

॥ दोहा ॥

पाप पदार्थ पाड़वो, ते जीवने घणो भयंकार। ते घोर रुद्र बिहामणो, जीवने दुःखतणो दातार ॥१॥ ते पाप तो पुद्गल द्रव्यछै, त्यांने जीव लगावै ताम। तिणसे दुःख उपजैछै जीवने त्यांरो पाप कर्म छै नाम ॥ २ ॥ जीव खोटा २ कर्तव्य करै जब पुद्गल लागै ताम। ते उदय हुआं दुःख उपजै, ते आप कमाया काम ॥ ३ ॥ पाप उदयथी दुःख हुवै जब कोई मत करिज्यो रोश। किया जिसा फल भोगवै, पुद्गलनो नहीं दोष ॥ ४ ॥ पाप कर्मने करणी पापरी, दोनूं जुदी २ छै ताम। ते यथा तथ्य प्रकट करूं, सुणिज्यो राखि चित्त ठाम ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

नव पदार्थों में पाप पदार्थ चौथा है सो पाडवा कहिये अत्यन्त खराब है, जीव को भयकारी और दुःखों का दायक है, पाप है सो पुद्गल द्रव्य हैं जीव उन्हें अशुद्ध कर्तव्य करके लगाता है उदय आने से अनेक प्रकार से दुःखी होता है तो पाप मयी पुद्गलों का दोष नहीं समझना चाहिये क्योंकि आपका कमाया हुआ काम है जैसा किया वैसा भोगना ही पड़ेगा हिन्सा झूठ चोरी आदि कर्तव्योंसे अशुभ पुद्गल जीव के लगते हैं उन पुद्गलों का नाम पाप कर्म है और ज्यों कर्तव्य किया वो पाप की करणी है जीवके परिणाम है इसलिये पाप और पाप की करणी अलग २ है जिसे यथार्थ प्रकट करके कहते हैं सो एकाग्र चित्त करिके सुनो।

॥ ढाल ॥

॥ या अनुकम्पा।जिन आज्ञामें एदेशीमें ॥

घणघातिया च्यार कर्म जिन भाख्या, ते आभ पडल बादल जिमजाणू । त्यां निजगुण जीव तणा ते बिगाड्या, चंद बादल ज्यूं जीव कर्म ढंकाणुं । पाप कर्म अंतः करण ओलखीजे ॥ १ ॥ ज्ञानावरणीने दर्शनावरणी, मोहनीय ने अन्तराय छै ताम । जीवरा गुण जेहवा २ विगाड्या, तेहवा २ छै कर्मां रा नाम ॥ पा ॥ २ ॥ ज्ञानावरणी कर्मज्ञान न आवादे, दर्शनावरणी दर्शन आवादे नाहिं । मोहनीय जीवने करै मतवालो, अंतराय आछी वस्तु आडी छै ताहि ॥ पा ॥ ॥ ३ ॥ ये कर्म तो पुद्गलरूपी चौस्पर्शी, त्यांने खोटी

करणी करि जीव लगाया, त्यांरे उदय जीवरा खोटा नाम। तेहवाहि खोटा नाम कर्म कहाया ॥ पा ॥ ४ ॥ यां च्यार कर्मांरी जुदी २ प्रकृति, जुदा २ छै त्यांरा नाम। त्यांसै जुवा २ जीवरा गुण अटक्या, त्यांरो थोड़ोसो विस्तार कहूंछूं ताम ॥ पा ॥ ५ ॥ ज्ञाना-वरणी री पांच प्रकृतिछै, तिणसूं पांचूंहीं ज्ञान जीव नहीं पावै। मति ज्ञानावरणी मति ज्ञानरै आडी, श्रुति ज्ञानावरणी श्रुति ज्ञान न आवै ॥पा॥६॥ अवधि ज्ञाना-वरणी अवधिज्ञानने रोकै, मन परयायवरणी मन पर्याय रै आडी। केवल ज्ञानावरणी केवलज्ञान ने रोकै यां पांचोंमें पांचमी प्रकृति जाडी ॥ पा ॥ ७ ॥ ज्ञाना-वरणी कर्म क्षयोपशम होवै, जबतो पामै छै जीव च्यार ज्ञान। केवल ज्ञानावरणी क्षयोपशम न होवै। या तो क्षय हुवां पावै छै केवल ज्ञान ॥ पा ॥८॥ दर्शनावरणी कर्मरी नव प्रकृति छै, तेतो देखवा ने सुणवादिक आडी। जीव ने जाबक कर देवै आंधो, त्यांमें केवल दर्शनावरणी सबमें जाडी ॥ पा ॥ ६ ॥ चक्षु दर्शनावरणी कर्म उदयसूं, चक्षुरहित होवै अंध अयाण। अचक्षु दर्शनावरणी कर्म रै जोगे, च्यारूं इंद्रियां री पडजाय हाण॥ पा ॥ १० ॥ अवधि दर्शना वरणीय कर्म उदयसे, अवधि दर्शण पामै नहीं

जीवो। केवल दर्शना वरणीय कर्म प्रसंगे, उपजै नहीं केवल दर्शण दीवो ॥ पा ॥ ११ ॥ निद्रा सूतो सुखे जगायो जागे छे, निद्रा २ उदय दुःखे जागे छै ताम। बैठां ऊभां जीवने नींद ज आवै, तिण नींद तणो छै प्रचला नाम ॥ पा ॥ १२ ॥ प्रचला २ नींद उदय से जीवने, हालतां चालतां नींद ज आवै। पांचमी नींद छे कठिन थीणोदी, तिण नींदसे जीव जावक दव जावै ॥ पा ॥ १३ ॥ पांच निद्रा ने च्यार दर्शनावरणी थी, जीव अंध जावक न सूझै लिगारो। देखवा आसरी दर्शनावरणी कर्म, जीवरै जावक कीधो अंधारो ॥ पा ॥ १४ ॥ दर्शनावरणी क्षयोपशम होवै जब, तीन क्षयोपशम दर्शन पामै ते जीवो। दर्शनावरणी सर्व क्षय हुयां थी, केवल दर्शन पामै ज्यूं घट दीवो ॥ पा ॥ १५ ॥ तीजो घणघातियो मोह कर्म छै, तिणरा उदयसूं जीव हुवै मतवालो। सूधी श्रद्धा रै लेखै मूढ मिथ्याती, माठा कर्त्तव्यरो पिण न हुवै टालो ॥ पा ॥ १६ ॥ मोहनीय कर्मना दोय भेद कह्या जिन, दर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीय कर्म, इण जीवरा निज गुण दोनूं विगाड्या। एक समकित ने दूजो चारित्र धर्म ॥ पा ॥ १७ ॥ दर्शन मोहनीय उदय हुवै जव, शुद्ध समकतीरो जीव होवै मिथ्याती।

चारित्र मोहनीय कर्म उदय जब, चारित्र खोय हुवै छक्कायारो घाती ॥ पा ॥ १८ ॥ दर्शन मोहनीय कर्म उदय हुवां सूं, शुद्ध श्रद्धा समकित नहीं आवै । दर्शन मोहनीय उपशम हुवै जब, उपशम समकित निरमल पावै ॥ पा ॥ १९ ॥ दर्शन मोहनीय जावक क्षय होयां, जब क्षायक समकित शाश्वती पावै । दर्शन मोहनीय क्षयोपशम हुवै जब, क्षयोपशम समकित जीवने आवै ॥ पा ॥२०॥ चारित्र मोहनीय कर्म उदयसूं, सव व्रत चारित्र नहीं आवै, चारित्र मोहनीय उपशम हुयां से । उपशम चारित्र निरमल पावै ॥ पा ॥ २१ ॥ चारित्र मोहनीय जावक क्षय होयां, क्षायक चारित्र आवै श्रीकार । चारित्र मोहनीय क्षयोपशम हुयां थी, क्षयोपशम चारित्र पामै जीव च्यार ॥ प ॥ २२ ॥ जीव तणा उदय भाव निष्पन्ना, तेतो कर्म तणा उदय से पिछाणो । जीवरा क्षायक भाव निष्पन्ना, ते कर्म तणा क्षायकसे जाणो । पा ॥२३॥ जीव तणा क्षयोपशम भाव निष्पन्ना, कर्म तणो क्षयोपशम ताम । जीवरा-उपशम भाव निष्पन्ना, ते उपशम कर्म हुयांसे नाम । पा॥२४॥ जीवरा जेहवा २ भाव निष्पन्ना, ते जेहवा २ छै जीवरा नाम । नाम पाया कर्म तणौ संयोग बिजोगे, तेहवाहिज कर्मांरा नाम छै ताम ॥ पा ॥ २५ ॥

॥ भावार्थ ॥

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय अंतराय ये च्यार घातिक कर्म हैं ये एकान्त पाप हैं इन्होंने जीवके निज गुणोंकी घात की है इसलिये इन्हें घातिक कर्म कहते हैं, जैसे आकाश में बादलों से चंद्रमा ढक जाता है तब उद्योत बहोत कम हो जाता हैं वैसे ही कर्म मयी बादलों से जीवके ज्ञानादिक गुन ढक जाते हैं सो कहते हैं- ज्ञानावरणीय अर्थात् ज्ञान के आडी आवरणी जिस से जीवका ज्ञान गुन दबा हुआ है, ऐसे ही दर्शनावरणीय, दर्शन गुणके आडी है, मोहनीय कर्म से जीव मतवाला होके मिथ्यात्व में प्रवर्त्तता है और शुद्ध श्रद्धारूप गुणका लोप होता है तथा जीवके प्रदेशों को चंचल करिके कर्म ग्रहण करता है जिससे चारित्र गुन उत्पन्न नहीं होता, और अंतराय कर्म से जीवका वीर्य गुण दबा हुआ है जिससे अच्छी २ वस्तु नहीं मिलती है ये च्यारों कर्म पुद्गल हैं रूपी और च्यार स्पर्शी हैं इन्हें जीव खोटी करणी करिके लगाया है जिन्होंके उदय से जीव भी खोटा २ नाम पाता है जैसा २ गुण जीव के इनसे रुके हैं वैसा ही इनके नाम हैं ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृति हैं अर्थात् पांच प्रकारसे जीवका ज्ञान गुण दबा है, मतिज्ञानावरणीयसे मतिज्ञान श्रुतिज्ञानावरणीयसे श्रुतिज्ञान अवधिज्ञानावरणीयसे अवधि ज्ञान मनपर्यव ज्ञानावरणीय से मनपर्यव ज्ञान और केवल ज्ञानावरणीयसे केवल ज्ञान अर्थात् सम्पूर्णज्ञान दबा हुआ है, ये ज्ञानावरणीय कर्म कुछ क्षय और कुछ उपशम होय तब जैसी २ कर्म प्रकृतिका क्षयोपशम होने से वैसा ही ज्ञानोत्पन्न होता है, यथा मति श्रुतिज्ञानावरणीय का जितना ही क्षयोपशम हो उतना ही निरमल मति श्रुति ज्ञान उत्पन्न होता है ऐसे ही अवधि तथा मनपर्यवको जानना अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्म की च्यार प्रकृतिका क्षयोपशम होनेसे जीव च्यार क्षयोपशम ज्ञान पाता है, और केवल ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम नहीं होता, क्षायक ही होता है जिसके क्षय होनेसे केवल ज्ञानोत्पन्न होता है। ऐसे ही दर्शना-

चरणीय कर्मकी नव प्रकृति हैं सो नेत्रोंसे देखना तथा सुनना आदिक रोकती है चक्षुदर्शनावरणीय के उदय से अंधा होता है, अचक्षु दर्शनावरणीय के उदय से चक्षु बिना च्यार इन्द्रियों का गुण सुनना आदिकी हानि होती है, अवधि दर्शनावरणीय के उदय से अवधि दर्शन नहीं पाता है, और केवल दर्शनावरणीय से केवल दर्शन नहीं उत्पन्न होता है, तथा पांच प्रकार की निद्रा भी दर्शनावरणीय कर्म के उदय से है सो कहते हैं, निद्रा अर्थात् जिस नींदवाले को जगाते साथ ही सुख से जागता है, दूसरी निद्रा निद्रा जिसकी कुछ छेड़ छाड़ करने से दुःख से जागतो है, तीसरी निद्रा का नाम प्रचला है, सो बैठे को या ऊभे हुए को आती है, चौथी प्रचला प्रचला वो चालते हालते हुए को आती है, और पांचमी नींद जिसका नाम थिणोद्धी है वो अति कठिन निद्रा है उस निद्रा वाले को उस समय बहोत ताकत आ जाती है वो निद्रावाला उस नींदमें अनेक काम कर आता है तथा सैकड़ों मन बोझ उठा सकता है। ये नव प्रकृति दर्शनावरणीय कर्म की है, दर्शनावरणी नामा पाप कर्म ने जीवका देखने का गुण दबाया है, इसका क्षयोपशम होनेसे जीव पांच इन्द्रिय और चक्षु दर्शन १ अचक्षु दर्शन २ अवधि दर्शन ३ ये आठ बोल पाता है और सर्वथा क्षय होनेसे केवल दर्शन पाता है। तीसरा घन घातिक पाप कर्म मोहनीय है जिसके उदयसे मतवाला याने अव्यक्त होके मिथ्या प्ररूपना करता है तथा उससे अशुद्ध कर्तव्यका टाला नहीं होता है अर्थात् जिन आज्ञा बाहरकी करणी में लिप्त रहता है, समकित मोहनीयसे सम्यक्त्व नहीं स्पर्शती, और चारित्र मोहनीयसे चारित्र गुण याने संयमी नही होता तथा छः जीव नीकाय की हिन्सा में रक्त रहता है। दर्शन मोहनीय को उपशमाने से अर्थात् दबाने से, जीव उपशम समकित पाता है, क्षय करने से क्षायक समकित शंका कंखा रहित ज्यो शाश्वती है सो पाता है, और क्षयोपशम होने से क्षयोपसमानुसार क्षयोपशम समकित पाता है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से सर्व

व्रत चारित्र नहीं होता है, उपशमाने से उपशम चारित्र निर्मल पाता है, सर्वथा क्षय होनेसे क्षायक चारित्र होता है, और क्षयोपशम होने से यथाख्यात चारित्र बिना बाकी च्यार चारित्रों की प्राप्ति होती है। तात्पर्य जीवके ज्यो उपशम भाव निष्पन्न हुए सो मोहनीय कर्म को उपशमाने से है, क्षायक भाव निष्पन्न हुए सो कर्मों को क्षय करने से, और क्षयोपशम भाव निष्पन्न हुए सो च्यार घातिक कर्मों को क्षयोपशमाने से होता है जीव के जैसे जैसे भाव कर्मों के संयोग वियोग से निष्पन्न होते है वैसा २ ही नाम जीवका है, और वोही नाम कर्मोंका है।

॥ ढाल तेहिज ॥

चारित्र मोहनीय तणी पचीस प्रकृतिछै, त्यां प्रकृति तणाछै जुवा २ नाम, त्यांरा उदयसे जीव तणा नाम तेहवा, कर्मने जीवरा जुदा २ परिणाम ॥ पा ॥ २६ ॥ जीव अत्यन्त उत्कृष्टो क्रोध करै जब, जीवरा दुष्ट घणा परिणाम। तिणने अनन्तानुबंधियो क्रोध कह्यो जिन, ते कषाय आतमा छै जीवरो नाम ॥ पा ॥ २७ ॥ जिणरा उदय से उत्कृष्टो क्रोध करै छै, ते उत्कृष्टो उदय आया सूं ताम। ते उदय आया छै जीवरा संच्या, त्यांरो अनन्तानुबंधियो कोध छै नाम ॥ पा ॥२८॥ तिणथी कांइक थोड़ो अप्रत्याख्यान क्रोध छै, तिणथी कांइ एक थोड़ो प्रत्याख्यान। तिणथी कांयक थोड़ो संजल क्रोध, या क्रोधरी चौकड़ी कही भगवान ॥ पा ॥२६॥ इण रीते मानरी

चौकड़ी कहणी, मायाने लोभरी चौकड़ी इम जाणो। च्यार चौकड़ी प्रसंगे कर्मां रा नाम, कर्म प्रसंग जीव रा नाम पिछाणो ॥ पा ॥ ३० ॥ जीव क्रोध करै क्रोध री प्रकृति से, मान करै मानरी प्रकृति से ताम। माया कपट करै मायारी प्रकृति सूं, लोभ करै लोभ प्रकृति से आम ॥ पा ॥ ३१ ॥ क्रोध करै तिणसूं जीव क्रोधी कहायो, उदय आई ते क्रोधरी प्रकृति कहाणी। इण रीते मान माया ने लोभ, याने पिण लीज्यो इण रीत पिछाणी ॥ पा ॥ ३२ ॥ जीव हंसै हांस्यरी प्रकृति से रति अरति प्रकृति सूं रति अरति बधारै। भय प्रकृति उदय जीव भय पामै, शोग प्रकृति उदय जीव ने शोग आवै ॥ पा ॥ ३३ ॥ दुगंछा आवै दुगंछारी प्रकृति सूं, स्त्रीवेद उदयसे बधै विकार। तिणने पुरुष नी अभिलाषा होवै, पछै होतां २ हुवै वहोत विगार ॥ पा ॥ ३४ ॥ पुरुष वेदोदय स्त्रीनो अभिलाषा, नपुं-सक वेदोदय दोनूंरी चहाय। कर्म उदय से वेदी नाम कह्यो जिन, कर्मां ने पण वेद कह्या जिनराय ॥ पा ॥ ३५ ॥ मिथ्यात उदय जीव होवै मिथ्याती, चारित्र मोह उदय जीव होवै कुकर्मी। इत्यादि माठा २ जीवरा नाम, अनारज ने बलि हिन्सा धर्मी ॥ पा ॥ ३६ ॥ चौथो घनघाती अन्तराय कर्म छै, तिणरी

प्रकृति पांच कही जिन ताम। ये पांच प्रकृति पुद्गल चौस्पर्शी, त्यां प्रकृतिरा छै जुवा २ नाम ॥ पा ॥३७॥ दाना अंतराय छै दानरै आडी, लाभा अन्तराय सूं वस्तु लाभ सकै नाहीं। ज्ञान दर्शन चारित्र तप लाभ न सकै, वले लाभ न सकै शब्दादिक कांई ॥पा॥३८॥ भोगा अन्तराय कर्म उदय से भोग मिल्या भोग भोगवणी न आवै। उपभोग अन्तराय कर्म उदय सूं, उपभोग मिल्या ते भोग्या नहीं जावै॥ पा ॥ ३९ ॥ वीर्य अंतराय कर्म उदय थी, तीनूं ही वीर्य गुण हीण थावै। उठाणादिक हीणा थावै पांचूं ही. जीवरो शक्ति जावक घट जावै ॥ पा ॥ ४० ॥ अनन्त बल प्राक्रम जीव तणो छै, तिणने एक अन्तराय कर्म घटायो। कर्म ने जीव लगायो जब लाग्यो, आपरो कियो आप तणे उदय आयो ॥ पा ॥ ४१ ॥ पांचूं अन्तराय जीव तणा गुण दाब्या, जेहवा गुण दाब्या तेहवा कर्मां रा नाम। ये तो जीव रै प्रसंगै नाम कर्मां रा, पिण स्वभाव दोनांरा जुदा २ ताम ॥ पा ॥ ४२ ॥

॥ भावार्थ ॥

मोहनीय कर्म के दो भेद हैं जिसमें दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृति और चारित्र मोहनीय की २५ प्रकृति है सो जैसी २ प्रकृति उदय आती है उस वक्त वैसा ही नाम जीव का और वैसा ही नाम उन प्रकृतियों का है जैसे अनन्तानुबंधिया क्रोध की प्रकृति उदय आई तब जीव

अत्यंत क्रोधातुर होके दुष्ट कार्य करता है यह क्रोध जावज्जीव पर्यंत रहता है इसके उदय में सम्यक्त्व चारित्र का सर्वतः अभाव है, उदय आई सो प्रकृति अजीव है और उस में प्रावर्त्या वो कषाय आत्मा जीव है इसी तरह अनन्तानुबंधिया मान माया और लोभ जानना, जिससे कुछ कम अप्रत्याख्यानी चौकडी जिसके उदय में प्रत्याख्यान अर्थात् पञ्चखान याने चारित्र का अभाव है, जिससे कुछ कम प्रत्याख्यान की चौकड़ी जिसके उदय में सर्व व्रत चारित्र का अभाव है, और जिससे कम संज्वल का क्रोध मान माया लोभकी चौकड़ी है, जिसके उदय में क्षायक चारित्र यथाख्यात संयम का अभाव है यह सोलह (१६) कषाय है इनके उदय से जीव का नाम कषायी अर्थात् कषाय आत्मा है, तात्पर्य क्रोध प्रकृति से जीव क्रोधी मान की प्रकृति से मानी, माया की प्रकृति से मायी और लोभ की प्रकृति से लोभी कहलाता है, अब बाकी नव प्रकृति रही सो कहते हैं हास्य प्रकृति के उदय से जीव को हास्य आता है, रति प्रकृति से प्रिय पुद्गलादि से रति होती है, अरति की प्रकृति से अप्रिय पुद्गलादि से अरति होती है, भय प्रकृति से भय होता है, शोग प्रकृति से शोग, और दुगंछा प्रकृति से विदगंछा आती है स्त्रीवेद उदय से जीव स्त्रीवेदी हो के पुरुषकी अभिलाषा पुरुष वेदके उदय से पुरुष वेदी होके स्त्रीकी अभिलाषा करता है, और नपुंसक वेदके उदय से नपुंसक वेदी होके दोनूं की अभिलाषा करता है। मिथ्यात्वके उदय से जीव मिथ्यात्वी होता है और चारित्र मोहनीय के उदय से जीव कुकरमी हिन्सा धर्मी होता है। चौथा घनघातिक अंतराय कर्म है सो जिसकी पांच प्रकृति है सो तो च्यार स्पर्शी पुद्गलों का पुञ्ज है जिन्हों के उदय से जीव के जैसे २ गुण दबे हैं वैसे ही प्रकृतियों का नाम है—दाना अंतराय से दानी पणे का गुण दबा है, लाभान्तराय से वस्तु का लाभ नहीं होता है तथा ज्ञान दर्शन चारित्र तप का लाभ नहीं होता है अथवा शब्द वर्ण गंध रस स्पर्श का भी लाभ नहीं होता

हैं, भोग अन्तराय कर्मोदय से मिले हुए भोग भी भोगे नहीं जाते हैं, उपभोग अन्तराय कर्म के उदय से मिले हुए उपभोग भी नहीं भोग सकता है, वीर्य अंतराय कर्म उदय से तीनूं वीर्य उठाण कम्म बल वीर्य पुर्षाकार प्राक्रम की हानि होती है, तथा अत्यन्त निर्बल हो जाता है, अनन्त बल प्राक्रम जीव के हैं उन्हें सिर्फ अंतराय कर्म ही घटाया है जैसा जीवात्मा कर्म बांधेगा वैसा ही उदय आवेगा, जीवके दान लाभ भोग उपभोग वीर्य इन पांचूं गुणों को अंतराय कर्म दबाया है वैसा ही नाम इस अन्तराय कर्म का है परंतु स्वभाव दोनूं का अलग २ है जीव के गुण जीव हैं और अन्तराय कर्म अजीव है जिस का गुण जीव के अन्तराय देने का है। तात्पर्य ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अन्तराय यह च्यार कर्म एकान्त पाप कर्म है अजीव है, जिन्हों के उदय से जीव के ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व चारित्र, वीर्य, यह च्यारों गुणों की घात हो रही है याने दबे हुए हैं इससे नाम घातिक कर्म है। बाकी च्यार कर्म अघातिक अर्थात् उपरोक्त अनन्त चतुष्टय की घात इन च्यारों से नहीं होती ये च्यारों कर्म पुन्य पाप दोनों हैं जिस में पुन्य का वर्णन तो पुन्य पदार्थ में कह ही दिया है अब पाप का वर्णन कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

च्यार घन घातिया कर्म कह्या जिन, हिवैं अघातिया कर्म छै बलि च्यार। त्यांने पुन्य पाप दोनूं कह्या जिन, हिव पाप तणुं कहूं छूं विस्तार ॥पा॥४३॥ जीव असाता पावै पाप कर्म उदय से, तिण पाप रो असाता वेदनी नाम। जीवरा संच्या जीवने दुःख देवै, असाता वेदनी पुद्गल परिणाम ॥ पा ॥४४॥ नारकीरो आउषो पापरो प्रकृति, केई तिर्यंचरो आउषो पिण

पाप। असन्नी मनुष्य ने केई सन्नी मनुषरो, पापरी प्रकृति दीसै छै विलाप ॥ पा ॥ ४५ ॥ ज्यांरो आउषो पाप कह्यो छै जिनेश्वर, त्यांरी गतिने अनुपूर्वि दीसै छै पाप। त्यांरो गति ने अनुपूर्वि दीसै आउषा लारै, इणरो निश्चय जाणै जिनेश्वर आप ॥ पा ॥ ४६ ॥ च्यार संघयण में जे हाड पाड़वा, ते अशुभ नाम कर्मोद्य सें जाणो। च्यार संठाण में आकार भूंडा ते, अशुभ नाम कर्मोद्य मिलिया आणो ॥ पा ॥ ४७ ॥ शरीर उपांग बंधण संघातण, त्यांमें केइकांरा माठा अत्यन्त अजोग। ते पण अशुभ नाम कर्म उदय से, अणागमता पुद्गलांरो मिलियो संयोग ॥ पा ॥ ४८ ॥ वरण गंध रस स्पर्श माठा मिलिया, ते अण गमता ने अत्यन्त अयोग। ते पिण अशुभ नाम कर्म उद्य से, एहवा अशुभ पुद्गलांरो मिलियो जोग ॥ पा ॥ ४९ ॥ थावर नाम कर्म उदय थावररो दशको, तिण दशकारा दश बोल पिछाणो। ते नाम उदय छै जीवरा नाम, तेहवा हिज नाम कर्मांरा जाणो ॥ पा ॥ ५० ॥ थावर नाम उदय जीव थावर कहाणूं, तिण से आघो पाछो सरकणो नहीं आवै। सूक्ष्म नाम उदय जीव सूक्ष्म हुवो छै, सूक्ष्म शरीर सघला नान्हो पावै ॥ पा ॥५१॥

साधारण नामसूं जीव हुवो साधारण, एकण शरीर में रहै अनन्ता ताम, अपर्याप्ता नामसे अपर्याप्तो मरै छै, तिणसूं अपर्याप्तो छै जीवरो नाम ॥ पा ॥ ५२ ॥ अथिर नाम से जीव अथिर कहाणो, शरीर अथिर जावक ढीलो पावै । दुभ नाम उदय जीव दुभ कहाणो, तिणसूं नाभि नीचे शरीर पाड़वो थावै ॥ पा ॥ ५३ ॥ दुःभाग्य नाम थकी जीव हुवो दुःभागो, अणगमतो लागै न गमै लोकाने लिगार । दुःस्वर नाम थकी जीव हुवै दुःस्वरियो, तिणरो कंठ अशुभ नहीं श्रीकार ॥ पा ॥५४॥ अणादेज नाम कर्म उदय थी, तिणरो वचन कोई न करै अङ्गीकार । अजश नाम कर्म थी होवै अजशियो, तिणरो अजश बोलै लोक बारम्बार ॥ पा ॥५५॥ अपघात नाम कर्म उदय थी, पैलो जीतै आप पामै घात । दुःभगई नाम कर्म संयोगे, तिणरी चाल दीठी किणहीने नाहिं सुहात ॥ ॥५६॥ नींच गौत उदय नींच हुवै लोक में, ऊंच गौत्र तणा तिणरी गिणै छै छोत । नींच गौत्र थकी हर्ष न पामै, पोतारो संच्यो उदय आयो नींच गौत ॥ पा ॥ ५७॥ ए पाप तणी प्रकृति ओलखावण, जोड़ कीधी श्रीजी द्वारा शहर मझार । सम्वत् अठारह पचावन बर्षे, जेठ सुदी तृतीया गुरुवार ॥ पा । ॥५८॥

॥ भावार्थ ॥

च्यार कर्म निकेवल पाप और घनघातिक है उनका वर्णन तो ऊपर किया ही है अब च्यार कर्म पुन्य पाप दोनों है सो जिस में से पाप का वर्णन करते हैं, जीव पाप के उदय से असाता वेदता है जिस पाप का नाम असाता वेदनी कर्म है वोह पुद्गल हैं असाता वेदनी कर्म पणे परिणमें हैं इसी लिये उन पुद्गलों का नाम असाता वेदनी पाप कर्म है, तथा जो आयुष्यणे परिणमें उन पुद्गलोंका नाम आयुष्य कर्म है आयुष्य च्यार प्रकार का है नारकी का आयुष्य पाप प्रकृति है तथा पृथिव्यादि पंचस्थावर और बेन्द्री तेन्द्री चौरिन्द्री का आयुष पाप प्रकृति है कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्री का भी आयुष्य पाप की ही प्रकृति है और असन्नी मनुष्य तथा कितनेक सन्नी मनुष्य का आयु कर्म भी पाप प्रकृति जाने पड़ता है जिस का आयुष पाप प्रकृति है उन को गति वा अनुपूर्वि भी पाप की ही प्रकृति है क्योंकि जो आयुष्य पाप प्रकृति है तो गति अनुपूर्वि भी उसके साथ ही है फिर निश्चित तो श्री जिनेश्वर देव कहैं वो सत्य है, तथा च्यार संघयण में ज्यो ज्यो खराब हड्डियें वा च्यार संस्थान में ज्यो ज्यो खराब आकार है वो अशुभ नाम कर्मके उदय से है, और ज्यो शरीर तथा अंगोपांग वंधण संघातन में कितनेकोंकि खराब खराब अमनोज्ञ पुद्गल है सो भी अशुभ नाम कर्म के उदय से हैं, और ज्यो २ कुवर्ण कुगन्ध रस कुस्पर्श आदि अमनोज्ञ मिले हैं सो भी अशुभ नाम कर्म का ही उदय है, तथा स्थावर का दशक अर्थात् स्थावर के दश बोल हैं वो भी अशुभ नाम कर्म का उदय है सो कहते हैं—

१—स्थावर नाम कर्म के उदय से जीव स्थावर होता है जिस से स्पर्श इन्द्री बिना बाकी च्यार इन्द्रियां न पाके चलने फिरने को असमर्थ होता है।

२—सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जीव सूक्ष्म शरीरी होके अत्यंत छोटा शरीर पाता है।

३—साधारण नाम कर्म के उदय से जीव ऐसा शरीर पाता है कि अत्यन्त छोटा एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं।

४—अपर्याप्ता नाम कर्म के उदय से जीव पूर्ण पर्याय न पाकर अपर्याप्ता अवस्था में ही मरण पाता है।

५—अथिर नाम कर्म के उदय से जीव अथिर कहलाता है जिस से निरवल ढीला शरीर पाता है।

६—दुभ नाम कर्म उदय से जीव दुभागी होता है जिस से दूसरे को अप्रिय लगता है।

७—दुस्वर नाम कर्मोदय से जीवके स्वर याने कण्ठ खराब बेस्वरे होते हैं।

८—अणादिज नाम कर्मोदय से आदेज वचनी न होके कुरबोली होता है जिसका वचन कोई अङ्गीकार नहीं करते हैं।

६—अजश नाम कर्म के उदय से जीव अजशिया होता है, जिस की शोभा कोई नहीं करता है कोई अच्छा काम भी करे तो भी अपयश ही होता है।

१०—अपघात नाम कर्मोदय से दूसरे के मुकाबले में हार होती है। तथा दुभगई नाम कर्म के उदय से चलना फिरना ऐसा खराब कि किसी को अच्छा नहीं लगता है, और नींच गोत्र कर्म पाप के उदय से जीव नींच गौत्रमें उत्पन्न होता है ऊंच गौत्र वाले उसकी छोत समझते हैं, तात्पर्य यह है कि पाप है सो अशुम कर्म है कर्म है वो पुद्गल है उन्हें जीव जिन आज्ञा बाहर की करणी करके लगाता है तब जीव के अशुभ पणें उदय आने से जीव दुःखी होता है, नव पदार्थों में चौथा पदार्थ पाप है जिसकी ओलखनाके लिए स्वामी श्री भीखनजीने नाथद्वारा नगर में ढाल जोडी है सम्वंत् अठारह सय पचावन की साल में ज्येष्ठ सुद तीज गुरुवारको जिसका भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धि प्रमाण कहा है इसमें कोई भूल रहा हो उसका मुझे सर्वथा मिच्छामि दुकडं है।

॥ दोहा ॥

आस्रव पदार्थ पांचमों, तिणने कहीजे आस्रव-द्वार। ते छै कर्म आवना बारणा, ते बारणा ने कर्म न्यार ॥ १ ॥ आस्रव द्वार तो जीव छै, जीवरा भला भूंडा परणाम। भला परणाम पुन्यारा बारणा, भूंडा पाप तणा छै ताम ॥ २ ॥ केई मूढ मिथ्याती जीवड़ा। आस्रव ने कहै अजीव। त्यां जीव अजीव ने ओलख्यो, त्यांरै मोटी मिथ्यात्वरी नींव ॥३॥ आस्रव तो निश्चै जीव छै, श्रीवीर गया छै भाख। ठाम २ सिद्धांत में भाषियो, ते सुणज्यो सूत्रनो साख ॥४॥ पाप आवाना बारणा, पहिलो कहूं छूं नाम। यथा तथ्य प्रगट करूं, ते सुणो राखि चित ठाम ॥५॥

॥ भावार्थ ॥

अब पांचमां पदार्थ आस्रव द्वार कहते हैं—जीव के आस्रव द्वार करके कर्म आते हैं कर्म और आस्रव अलग २ हैं अर्थात् आस्रव द्वार तो जीव है और द्वारों में होके आने वाले कर्म अजीव है, जीव के भले और बुरे परिणाम है सोही आस्रव द्वार है भले परिणामों से पुन्य और बुरे परिणामों से पाप लगता है, पुण्य पाप का करने वाला जीव है जिसी का नाम आस्रव है, परन्तु केई मिथ्याती आस्रव को अजीव कहते हैं सो जीव अजीव के अजाण हैं वे मिथ्यात्व मयी दीवार की बुनियाद दृढ़ करते हैं किन्तु आस्रव द्वार कदापि अजीव नहीं है निश्चय ही जीव है श्रीवीर प्रभु ने अंगोपांग में जगह जगह कहा है सो प्रथम तो आस्रव द्वार को यथा तथ्य ओलखाते हैं, यथा—

॥ ढाल ॥

॥ विनयरा भाव सुंण २ गुंजे एदेशी ॥

ठाणा अंग सूत्र मझार, कह्या छै पांच आस्रव-द्वार। ते द्वार छै महा विकराल, त्यां में पाप आवै दग चाल ॥ १ ॥ मिथ्यात अव्रत ने कषाय, प्रमोद जोग छै ताय। ये पांचूं ही आस्रवद्वार छै ताम, ये निश्चय ही जीव तणा नाम ॥ २ ॥ ऊंधो श्रद्धै ते आस्रव मिथ्यात. ऊंधो श्रद्धै ते जीव साक्षात। तिण आस्रव नो रूंधण हार, ते समकित संवर द्वार ॥३॥ अत्याग भाव अव्रत छं ताम, जोव तणा माठा परि-णाम। तिण इव्रत ने देवै निवार. ते व्रत छै संवर द्वार ॥४॥ नहीं त्याग्या छै ज्यां द्रव्यांरी, आसा वंछा लागी रहै त्यांरी। अव्रत जीव तणां परिणाम, तिणने त्यागां संवर हुवै आम ॥५॥ प्रमाद आस्रव छै ताम, ये पिण जीवरा मैला परिणाम। प्रमाद आस्रव रुंधाय, जव अप्रामद संवर थाय ॥६॥ कषाय आस्रवछै ताम, जीवरा कषाय परिणाम, त्यासुं पाप लागै छै आय। ते अकषाय सुं मिटजाय ॥७॥ सावद्य निरवद्य जोग व्यापार, ये पांचूं ही आस्रव द्वार। रूंधै भला भूंडा परिणाम, अजोग संवर तिणरो नाम ॥८॥ पांचूं आ-स्रव उघाड़ा द्वार, कर्म आवै यां द्वार मझार। द्वारते

जीव परिणाम त्यांसूं कर्म लागेछै ताम ॥९॥ त्यांरा ढांकण संवर द्वार, आस्रव द्वाररा रूंधण हार। नवा कर्मांरा रोकण हार, ये पिण जीवरा गुण श्रीकार ॥१०॥ इमहिज कह्यो चौथा अंग मझार, पांच आस्रवने संवर द्वार। आस्रव कर्मारो करता उपाय, कर्म आस्रवसूं लागैछै आय ॥११॥ उत्तराध्ययन गुणतीसमा मांह्यो, पडिक्कमणांरो फल बतायो। व्रतांरो छेद्र ढंकायो, वलि आस्रव द्वार रूंधायो ॥१२॥ उत्तराध्ययन गुणतीसमा मांह्यो, पचखाणरो फल बतायो। पचखाणसुं आस्रव रूंधायो, आवता कर्म मिट जायो। ॥१३॥ उत्तराध्ययन गुणतीसमा मांह्यो, जलना आगम रूंधायो। जब पाणी आवती मिट जावै, आस्रव रूंध्यांसुं कर्म न आवै ॥१४॥ उत्तराध्ययन गुणतीसमा मांह्यो, माठा द्वार ढांक्या कह्या तह्यो। कर्म आवाना ठाम मिटाय, जब पाप न लागै आय ॥१५॥ ढांकिया आस्रव द्वार, जब पाप न बंधै लिगार। कह्यो छै दशवैकालिक मझार, तीजा अध्ययन में आस्रव द्वार ॥१६॥ रूंधै पांचूं ही आस्रव द्वार, ते भिक्षु मोटा अणगार। ते पिण दशवैकालिक मझार, तिहां जोय करो निस्तार ॥१७॥ पहिलां मन जोग रूंधै ते शुद्ध, पछै बचन काया जोग रूंधै। उत्तराध्यायन गुणतीसमा

मांह्यो, आस्रव रूंधणा चाल्याछै तह्यायो ॥१८॥ पांच अधर्मद्वार छै ताहयो, तेतो प्रश्न व्याकरण मांह्यो। वले पांच कह्या संवर द्वार, यां दोयांरो घणो विस्तार ॥१९॥ ठाणा अंग पांचमा ठाणा मांहि, आस्रवद्वार पडिक्कमणा ताहि। पडिक्कमियां पछै रूंधावै द्वार, फेर पाप न लागै लिगार ॥२०॥ फूटी नावारो दृष्टांत, आस्रवने ओलखायो भगवंत, भगवती तीजा शतक मझार। तीजै उद्देशै छै विस्तार ॥ २१ ॥ वलि फूटी नावारो दृष्टांत, आस्रवने ओलखायो भगवंत। भगवती पहिला शतक मझार, छट्ठै उद्देशै छै विस्तार ॥ २२ ॥ कह्या छै पांच आस्रव द्वार, वलि अनेक सूत्रां मझार। तेतो पूरा केम कहाय, सघलांरो छै एकज न्याय ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

श्रीठाणांग सूत्र के पांचवें ठाणे में पांच आस्रव द्वार कहे हैं। मिथ्यात्व १. अव्रत २ प्रमाद ३ कषाय ४ जोग ५ यह पांच प्रकार के आस्रव द्वार हैं अर्थात् जीव के इन पांचों द्वारा कर्म लगते हैं। मिथ्या श्रद्धा से अव्रत से प्रमाद से कषाय से और मन वचन काया के जोग वर्ताने से, जीव मिथ्यात्व में प्रवर्त्या सो मिथ्यात्व आस्रव जीव के परिणाम है १ अव्रत अर्थात् जिस जिस द्रव्यों के त्याग नहीं किये उन द्रव्यों की आशा वंच्छा निरन्तर है सो अव्रत आस्रव जीव के परिणाम है २ प्रमाद अर्थात् निर्वद्य कार्य से अण उत्साह सो जीव के मैले परिणाम हैं ३ कषाय अर्थात् क्रोध मान माया लोभ में प्रवर्त रहा है सो कषायं आस्रव जीव के परिणाम है ४ जोग अर्थात् मन वचन काया के

जोगों का व्यापार सो जोग आस्रव जीव के परिणाम है ५ उपरोक्त पांचूं आस्रव जीव के उघाड़े द्वार है इन द्वारों होके कर्म आते हैं द्वार हैं सो जीव के परिणाम हैं जीव के परिणाम हैं सो जीव है, श्रीठाणांग सूत्र की टीका में श्री अभयदेव सूरि ने कहा है अत्र टीका-"आश्रवणं जीवत डागे कर्म जलस्य संगलन माश्रवः कर्म बंधन मित्यर्थः तसद्वाराणीव द्वाराण्युपाया आस्रव द्वाराणीति" अर्थात् कर्मों का बंध करै कर्मों का उपाय सोही आस्रव द्वार है, आस्रव द्वारों का ढांकण संवर द्वार है जिससे न्यूतन कर्म नहीं बंधते हैं, ऐसे ही चतुर्थाङ्ग श्री समवायाङ्ग में पंच आस्रव द्वार और पंच संवर द्वार कहे हैं आस्रव द्वारा कर्म लगते हैं संवर द्वारा कर्म रुकते हैं; तथा उत्तराध्ययन गुणतीसमा अध्ययन में कहा है प्रतिक्रमण करने से व्रतों का छिद्र ढकते हैं तथा आस्रव द्वार रूंधता है, पच्चखाण से भी आस्रव रूंधता है और आवते कर्म मिटते हैं, तथा इसी अध्ययन में कहा है जैसे जलके आगमन रोकने से जल नहीं आता है वैसे ही आस्रव द्वार रूंधने से पाप नहीं आता है, तथा दशवै-कालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन में कहा है आस्रव द्वारों को ढकणे से पाप नहीं बंधता है भिक्षु वोही है सो आस्रव द्वारों को रूंधै, उत्तरा-ध्ययन के गुणतीसमा अध्ययन में खुलासा कहा है आस्रव द्वार को रूंधने से कर्मों की मुक्ति होती है, तथा प्रश्न व्याकरण सूत्र में हिन्सादि पंच आस्रव द्वारों को अधर्म द्वार कहे हैं, श्रीठाणाङ्ग के पांचवें ठाणे में कहा है आस्रव द्वार का प्रतिक्रमण करके रूंधना अर्थात् बंध करना चाहिये जिससे फिर पाप नहीं लगता है, यही क्यों श्री भगवती सूत्र के तीसरा शतक के तीसरे उद्देशे में फूटी नावा का दृष्टान्त देके आस्रव को ओलखाया है अर्थात् जैसे नावा के छिद्र होने से नावा में पानी भरता है वैसे ही जीव मयी नावा में आस्रव मयी छिद्र से कर्म मयी पानी आता है, तात्पर्य कर्मों का हेतु उपाय और करता आस्रव है हेतु उपाय करता है सो जीव है।

॥ ढाल तेहिज ॥

आस्रव द्वार ठाम ठाम, ते तो जीव तणा परि-णाम, त्याने अजीव कहै छै मिथ्याती। खोटी श्रद्धा तणा पख पाती ॥ २४ ॥ कर्मों ने ग्रह ते जीव द्रव्य। ग्रहै तेहिज आस्रव। ते तो जोव तणा परिणाम। तिणसूं कर्म लागै छै ताम ॥२५॥ जीवने पुद्गलरो मेल, तीजा द्रव्य तणुं नहीं भेल। जीव लगावै जाण जाण, जब पुद्गल लागै छै आण ॥ २६॥ तेहिज पुद्गल छै पुन्य पाप, त्यांरो करता छै जीव आप। करता तेहिज आस्रव जाणो तिणमें शंका मूल म आणो ॥ २७॥ जीव छै कर्मा'रो करता, सूत्र में पाठ अपरता। कह्यो छै पहिला अंग मझार, जीव कर्मा' रो करतार ॥ २८॥ पहिलो उद्देशो संभालो, इणनें करता कह्यो तिहुं कालो, जीव स्वरूप तणुं अधिकार, तीन करणें कह्यो करतार ॥ २६ ॥ करता तेहिज आस्रव ताम, जीवंरा भला भूंडा परिणाम। परिणाम ते आस्रव द्वार, ते जीव तणुं छै व्यापार ॥ ३० ॥ करता करणी नें हेतु उपाय, यह कर्मा'रा करता-कहाय। यांसूं कर्म लागै छै आय; त्यांने आस्रव कह्यो जिन राय ॥ ३१ ॥ सावझ करणी करतां कर्म

लागै, तिण सूं दुःख भोगवसी आगै । सावद्य करणी नें कहै अजीव । ते तो निश्चय मिथ्याती जीव ॥३२॥ जोग सावज निरवद्य चाल्या, त्यांनें जीव द्रव्य में घाल्या । जोग आत्मा कही छै ताम, जोगां ने कह्या जीव परिणाम ॥ ३३ ॥ जोग छै ते जीव व्यापार, जोग तेहिज आस्रव द्वार । आस्रव तेहिज जीव निःशङ्क, तिण में मूल म जाणूं शङ्क ॥ ३४ ॥ लेश्या भली नें भूंडो चाली, त्यांनें पिण जीव द्रव्यमें घाली । लेश्या उदय भाव छै ताम, लेश्या ते जीव परिणाम ॥३५॥ लेश्या कर्मां सूं आतम लेशै, ते तो जीव तणां प्रदेशै । ते पिण आस्रव जीव निःशंक । त्यांरा थानक कह्या असङ्ख ॥ ३६ ॥ मिथ्यात अव्रत प्रमाद कषाय, उदय भाव छै जीव तहाय । कषाय आत्मां कही छै ताम, यानें कह्या छै जीव परिणाम ॥३७॥ ये पांचूं ही छै आस्रव द्वार, ते कर्म तणा करतार । ये पांचूं ही जीव साक्षात, तिण में शंका नहीं तिलमात ॥ ३८ ॥ आस्रव जीव तणा परिणाम, नव में ठाणें कह्यो छै ताम । जीवरा परिणाम छै जीव, त्यांनें विकल कहै छै अजीव ॥ ३९ ॥ नवमा ठाणा अङ्ग ठाणा मांहि, आस्रव कर्म ग्रहै छै ताहि, कर्म ग्रहै ते आस्रव जीव । ग्रह्या आवै ते पुद्गल अजीव ॥ ४० ॥ वलि ठाणा अंग

दश में ठाणें। दश बोल ऊंधा कुण जाणै। ऊंधा श्रद्धै तेहिज मिथ्यात। तै आस्रव जीव साक्षात॥ ४१॥ पांच आस्रव ने अव्रत ताम। माठी लेश्या तणा परिणाम। माठो लेश्या तो जीव छै ल्हाय। तिणरा लक्षण अजीव किम थाय॥ ४२॥ जीव नें लक्षणां सूं पिछाणो। जीवरा लक्षण जीव जाणो। जीवरा लक्षणां नें अजीव स्थापै। ते तो वीरना बचन उथापै॥ ४३॥ च्यार संज्ञा कहि जिनराय। ते पिण पाप तणूं छै उपाय। पाप उपाय ते आस्रव। ते आस्रव छै जीव द्रव्य॥ ४४॥ भलानें भूंडा अध्य-वसाय। त्यांने आस्रव कह्या जिनराय। भला सूं तो लागै छै पुन्य। भूंडासुं लागै पाप जबून॥ ४५॥ आर्त्तने रुद्र ध्यान। त्यांने आस्रव कह्या भगवान। आस्रव कर्म तणां छै द्वार। द्वार तेहिज जीव व्यापार॥ ४६॥ पुन्यनें पाप आवाना द्वार। ते कर्मतणा करतार। कर्मांरो करता आस्रव जीव। तिणनें कहै अज्ञानी अजीव॥ ४७॥ जे आस्रवने अजीव जाणै। ते पीपल बंधी मूर्ख जिम ताणै। कर्म लगावै ते आस्रव, ते निश्चै छै जीव द्रव्य॥ ४८॥ आस्रव ने कह्यो छै रूंधाणां। आ जिनजीरा मुखरो वाणीं। ओ किसो द्रव्य रूंधाणूं। किसो द्रव्य थिर थपाणूं॥४९॥ विप-

रीत तत्व कुण जाणै । कुण मांडे उलटी ताणै । कुण हिन्सादि करो अत्यागी । कुणरो वंछा रहै लागी ॥ ५० ॥ शब्दादिक कुण अविलाषै । कषाय भाव कुण राखै । कुंण मन जोगरो व्यापारो । कुण चिन्तै म्हारो नें थांरो ॥५१॥ इन्द्रियां नें कुण मोकली मेलै । शब्दादिक नें कुण भेलै । इणनें मोकली मेलै ते आस्रव । आस्रव तेहिजछै जीव द्रव्य ॥५२॥ मुखसुं कुण भूंडो बोलै । कायासुं कुण माठो डोलै । ये तो जीव द्रव्यनुं व्यापार । पुद्गल पिण वर्तै छै लारै ॥५३॥ जीवरा चलाचल प्रदेश । त्यांनें स्थिर स्थापै दृढ़ करेश । जब आस्रव द्रव्य रूंधाणूं । तब तेहिज संबर थपाणूं ॥५४॥ चलाचल जीवरा प्रदेश । सघलां प्रदेशां कर्म प्रवेश ॥ सारा प्रदेश कर्म ग्रहन्ता । सघला प्रदेश कर्म करन्ता ॥५५॥ त्यां प्रदेशांरो थिर करणहार । तेहिज छै संबर द्वार ॥ अथिर प्रदेश छै आस्रव । ते निश्चै ई छै जीव द्रव्य ॥५६॥

॥ भावार्थ ॥

जैन सिद्धान्तों में जगह जगह आस्रवद्वार का वर्णन विस्तार पूर्वक कहा है सो सम्पूर्ण कहांतक कहैं सारांश सबका एक यही है कि आस्रवद्वार हैं सो जीव के परिणाम हैं जीव के परिणामों को अजीव कहैं उन्हें मिथ्यात्वी जानना, भगवानने तो सूत्रों में फरमाया है कि कर्मों को ग्रहण करै सो आस्रव है इसलिये बुद्धिमान जनोंको विचारणा

चाहिये कि कर्मों को ग्रहण कौन करता है और ग्रहण क्या होते हैं, जीव ग्रहण करता है तब पुन्य पाप मयी पुद्गल ग्रहण होता है, करता है सो ही आस्रव है प्रथमाङ्ग में कहा हैं जीव कर्मोंका करता तीनूं काल में है, करता करणी हेतु उपाय यह कर्मों के करता है इनसे कर्म लगते हैं इसीलिये इन्होंको जिनेश्वर देवोंने आस्रव कहा है, तथा सावद्य करणी से पाप लगता है सावद्य करणी है सोही जीव है और उसी का नाम आस्रव है, लेश्या कर्मों से आत्म प्रदेशों को लेशती है अर्थात् लिप्त करती है तथा मन वचन काया के जोगोंसे कर्म लगते हैं सो जोग आस्रव कहा है उसी को जोग आतमा कही है करन करावन अनु-मोदन इन तीनूंहीं करणों से जीव कर्म करता है और करता है सोही आस्रव है, जोग सावद्य निरवद्य दोनूं प्रकार के हैं सो जीव है सावद्य जोगोंसे पाप और निरवद्य जोगोंसे पुन्य ग्रहण होता है, आस्रव मुख्य पांच प्रकारके कहे हैं—मित्थ्यात अर्थात् विरुद्ध श्रद्धा आस्रव १ अव्रत आस्रव २ अत्यागभाव, प्रमोद आस्रव ३ कषाय अर्थात् क्रोध मान माया लोभ आस्रव ४ जोग अर्थात् मन वचन काया को प्रवर्तना सो आस्रव ५ तथा हिन्सा झूंठ चौरी मैथुन परिग्रह ये पांच आस्रव और अव्रत इनको माठी लेश्या के परिणाम कहे हैं माठी लेश्या जीव है तो उसके परिणाम अजीव कैसे हो सकता है माठी लेश्या के परिणामों को तथा लक्षणों को अजीव कहैं उन्हें मिथ्यात्वी जानना, च्यार संज्ञा पापका उपाय है सो जीव है भले और खराव जीव के परिणामों से ही पुन्य और पाप ग्रहण होता है ग्रहण करै उसी का नाम आस्रव है, ऐसे ही आर्त रौद्र ध्यानसे पाप लगता है, आर्त रौद्र ध्यान है सो जीव है और उसीका नाम आस्रव है इत्यादि अनेक प्रकारों से जीव कर्मों का करता है सो ही आस्रव हैं कुगुरुवोंका पक्ष ग्रहण करके मूर्ख लोग आस्रवद्वार को अजीव कहते हैं सो पीपल बंधी मूर्ख समान ताणते हैं, यथा जैसे एक दृष्टिवंध मंत्रवादी एक गाम में आया और अपना

तमासा करके लोकोंको आश्चर्य उपजाने लगा जितने तमासवीन थे उन सबको नजर बंध करके पीपलके दरख्त के कोई पदार्थ रस्सी से मजबूत बांध दिया और तमासवीनों को कहा सब मिलके इसे खींचो ये पदार्थ निःसहाय और पीपल से कितना दूर है तब सब तमासवीनोंने मिलके उसे खेंचा, परन्तु वो तो थोड़ी दूर भी नहीं सरका इतनी देरमें एक आदमी ग्रामान्तर जाता हुआ उस जगह आया उसकी नजर बंधी हुई नहीं थी तब वोह देखके तमासवीनों से कहने लगा तुम लोक बड़े मूर्ख हो पीपलके बंधी हुई तुमसे कैसे खिचेंगी ये सुनके तमासवीन कहने लगे कि कहां बंधी हुई हैं हम सब लोक देखैं सो तो झूंठे और तू एकला सच्चा भला यह भी कोई बात है हमारे नेत्र नहीं हैं? क्या हम सब अंधे हैं। यह कहके खेंचताण करने लगे परन्तु उस ग्रामान्तर जानेवाले और सत्य कहने वाले की बात किसीने भी न मानी ऐसे ही दीर्घ कर्मी जीवोंके ज्ञान नेत्र मिल्थ्यात्व मयी मंत्रसे कुगुरुवों ने बंधकर रक्खे हैं, जिससे वे लोक सद्गुरुवोंका कहना तो मानते हैं नही और अपनी जिद्द करके जीवके लक्षणोंको अजीव श्रद्धते हैं परन्तु यह नहीं समझते कि मिल्थ्यात्व आस्रव है सो विपरीत श्रद्धा है और विपरीत श्रद्धना किसकी है तथा हिन्साके अत्याग भाव किसके हैं और शब्दादिक का अभिलाषी कौन है कषायी कौन है मन वचन कायाके जोगोका व्यापार किसका है तथा मेरा तेरा समझना किसका है और पंच इन्द्रियोंकी विषय में प्रवर्तता और विषयी कौन होता है, परन्तु इत्यादि उपरोक्त सब जीव के कार्य हैं तात्पर्य जीव के सम्पूर्ण असंख्यात प्रदेश पूर्व कर्मानुसार चला चल होते हैं नव न्यूतन कर्म प्रदेशोंको श्रवता है अर्थात् ग्रहण करता हैं सो जीव है बस उसी का नाम आस्रव द्वार है, और चञ्चलताको रोक कर आतम प्रदेश स्थिर होते हैं उसी का नाम संवर है तात्पर्य जीव के अथिर प्रदेश आस्रव है और स्थिर प्रदेश संवर है।

॥ ढाल तेहिज ॥

जोगपरिणामिकनें उदयभाव। त्यांने जीव कह्या इण न्याय। अजीव तो उदय भाव नांहि। ते देखल्यो सूत्र मांहि ॥५७॥ पुन्य निरवद्य जोग सुं लागैछे आय। ते करणी निरजरारी छै तहाय। पुन्य तो सहिजे लागै छै ताहि। तिणसुं जोग छै आस्रव मांहि ॥५८॥ जेजे संसारना छै काम। त्यांरा किण २ रा कहूं नाम। ते सघलाछै आस्रव ताम। ते सघला छै जीव परिणाम ॥ ५६॥ कर्मां ने लगावै ते आस्रव। लगावै तेहिज छै जीव द्रव्य। लागै ते पुद्गल अजीव। लगावै तेतो निश्चय छै जीव ॥६०॥ कर्मांरो करता छै जीव द्रव्य। करता पणों तेहिज आस्रव। कीधा हुआ ते कर्म कहाय। तेतो पुद्गल लागैछै आय ॥६१॥ त्यांरै गूढ मिथ्यात अंधारो ते पिछाणें नहीं आस्रव द्वारो। त्यांनें संवलो तो मूल न सूझै। ते तो दिन २ अधिक अलूझै ॥ ६२ ॥ जीवरै आडा छै कर्म आठ। ते तो लग रह्या पाटान् पाट। त्यांमें घातिया कर्म छै च्यार। मोक्षमार्गरा रोकणहार ॥ ६३ ॥ और कर्मां सुं जीव ढंकाय। मोह कर्म थकी बिगड़ाय। बिगड्यो करै सावज व्यापार। तेहिज छै आस्रवद्वार ॥६४॥ चारित्र

मोह उदय मतवालो । तिणसुं सावद्यरो न हुवै टालो । ते सावद्यरो सेवण हारो । तेहिजछै आस्रव द्वारो ॥६५॥ दरशण मोह उदय अछै ऊंधो । हाते मारग न आवै सूधो । ऊंधी श्रद्धारो श्रद्धणहार । ते मित्थ्यात्व आस्रवद्वार ॥६६॥ मूढ कहै आस्रव ने रूपी । वीर कह्यो आस्रवने अरूपी । सूत्रां में कह्यो ठाम ठाम । आस्रवनें अरूपी ताम ॥६७॥ पांच आस्रवनें अब्रत ताम । माठी लेश्या तणा परिणाम । माठी लेश्या अरूपी छै तहाय । तिणरा लक्षण रूपी किम थाय ॥६८॥ ऊजलाने मैला कह्या जोग । मोह कर्मसे जोग विजोग । ऊजला जोग मैला थाय । कर्म झडियां ऊजला होजाय ॥६६॥ उत्तराध्ययन गुण तीसम मांय । जोग समुचय कह्या जिनराय । जोग सच्चै निरदोषमें चाल्या । त्यांनें साधांरा गुण मांहि घाल्या ॥ ७० ॥ साधांरा गुण छै शुद्ध मान । त्यांनें अरूपी कह्या भगवान । त्यां जोग आस्रव ने रूपी थाप्या । त्यां वीरना वचन उथाप्या ॥७१॥ ठाणा अंग तीजा ठाणा मझार । जोग वीर्य तणो व्यापार । तिणसुं अरूपी छै भाव जोग । रूपी श्रद्धै ते श्रद्धा अजोग ॥७२॥ जोग आतमा जीव अरूपी । त्यां जोगांने कहै मूढ रूपी । जोग आतमा जीव परि-

णाम। ते निश्चय अरूपी छै ताम ॥७३॥ आस्रव जीव श्रद्धावण ताहि। जोड़ कोधी पाली शहर मांहि। अट्ठारे सह पचावन मझार। आसोज सुद बारस रविवार ॥७४॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

जीव के प्रदेश चंचल होते हैं तब ही कर्मों के प्रदेशों को ग्रहण करते हैं उसी का नाम आस्रव है और स्थिर होके कर्म ग्रहण नहीं करते उस का नाम संवर हैं, तात्पर्य निरजरा की करणी करते शुभ जोगों की वर्त्तना से जीव पुण्य उपार्जन करता है और मोहकर्म के उदय से अशुभ जोगों की वर्त्तना से जीव पापोपार्जन करता है पुण्य या पाप के प्रदेशों का उपार्जन करने वाले जीव के प्रदेश हैं उन्हीं का नाम आस्रव द्वार है, कर्मों का उपार्जन या करता करणी कारण हेतु और उपाय ये सब नाम आस्रवके ही हैं; किन्तु जिन्हों के घट में मिथ्यात्व-मयी महा घोरान्धकार है उन्हों की श्रद्धा आस्रव को अजीव श्रद्धने की है, परन्तु वो लोग यह नहीं विचारते हैं कि जीव के अष्टकर्म अनादि कालसे लगे हुए हैं जिसमें च्यार घातिक कर्मोंने जीव के अनन्त चतु-ष्टय गुणोंकी घात करी हैं जिसमें मोह कर्म से जीव बिगड़के अनेक तरह है के कुकार्य करके अशुभ कर्म उपार्जन करता है और कराता है इसी लिये करता जीव का नाम आस्रव है, चारित्रमोह के उदय से जीव सावद्य करणी कर के पाप लगाता है और दरशण मोह के उदय से मिथ्यात्वी होता है मिथ्या श्रद्धना ही मिथ्यात्व आस्रव है, भग-वान ने तो आस्रव को अरूपी जगह २ कहा है, परन्तु मूढ़ मती आस्रव को रूपी कहते हैं पांच आस्रवों को तथा अव्रत को कृष्णादि तीन माठी अर्थात् खोटी लेश्याके परिणाम तथा लक्षण कहे हैं जो माठी लेश्या जीव है तो उसके लक्षण अजीव कैसे हो सकते हैं, फिर मोह कर्म के

संयोग से मैले और वियोगसे ऊजले जोग कहे हैं जोग हैं सोही आस्रव है, उत्तराध्ययन के गुणतीसमां अध्ययन में जोग समुच्चय कहे हैं जोगों का वर्णन साधुवों के गुणों में है साधु के गुण शुद्ध हैं निरमल हैं अरूपी है, तथा ठाणांगके तीसरे ठांणे कहा है मन वचन काया के भावे जोग है सो जीव का वीर्य गुनका व्यापार है इसी लिये जोग आतमा कही है जोग आतमा है सो अरूपी है और करता है सो जोग आस्रव है, आस्रव को जीव श्रद्धानें के लियें स्वामी श्री भीखनजीने मारवाड़ देशान्तर्गत पाली शहर में सम्वत् १८५५ आसोज सुद १२ रविवार को ढाल जोड़के यथा तथ्य विस्तार कहा है जिसका भावार्थ मैंने तुच्छ बुद्धी प्रमाण किया है इस में कोई अशुद्धार्थ हो उसका मुझे बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं है।

॥ दोहा ॥

आस्रव कर्म आवाना बारणा। त्यांनें विकल कहे छै कर्म॥ आस्रवद्वार नें कर्म एक हिज कहे। ते भूला अज्ञानी भ्रम ॥१॥ कर्म आस्रव छै जुवा जुवा। जुवा जुवा त्यांरा सुभाव ॥ कर्म ने आस्रव एक ही कहे। त्यांरो मूढ़ न जाणें न्याव ॥२॥ वलि आस्रव ने रूपी कहे। आस्रव ने कहे कर्मद्वार॥ द्वार ने द्वार में आवे तेह ने। एक कहे छै मूढ़ गिमार ॥३॥ तीन जोगां ने रूपी कहे। त्यांने हिज कहे आस्रव द्वार॥ वलि तीन जोगां ने कहे कर्म छै। ओ पिण नहीं विचार ॥४॥ आस्रव तणा बीस भेद छै। ते जीव तणी पर्याय॥ ते कर्म तणा कारण कह्या। ते सुणिजो चित्तल्याय ॥५॥

॥ ढाल ॥

(चतुर विचार करि ने देखो एदेशी)

मिथ्यात आस्रव तो ऊंधो श्रद्धै छै, ऊंधो श्रद्धै ते जीव साचातो रे। तिण मिथ्यात आस्रव ने अजीव श्रद्धै छै, त्यांरा घट मांहि घोर मिथ्यातो रे। आस्रव पदार्थरो निरणो कीजो ॥१॥ जे जे सावद्य काम त्याग्या नहीं छै, त्यांरी आशा बंछा रही लागी रे। तिण जीव तणा परिणाम छै मैला, अत्याग भाव छै अव्रत सागी रे ॥ आ ॥२॥ प्रमाद आस्रव जीव परिणाम छै मैला, तिण सुं लागै निरंतर पापोरे। तिण ने अजीव कहै छै मूढ़ मिथ्याती, तिणरै खोटी श्रद्धारी थापोरे ॥ आ ॥३॥ कषाय आस्रव ने जीव कह्यो जिनेश्वर, कषाय आतमा कहि छै तामोरे। कषाय करवारो सभाव जीव तणूं छै, कषाय छै जीव परिणामो रे ॥ आ ॥४॥ जोग आस्रव ने जीव कह्यो जिनेश्वर, जोग आतमा कहि छै तामो रे। तीनूं ही जोगांरो व्यापार जीव तणूं छै, जोग छै जीव परिणामोरे ॥ आ ॥५॥ जीवरी हिन्सा करै ते आस्रव, हिन्सा करै ते जीव साचातो रे। हिन्सा करै ते परिणाम जीव तणा छै, तिण में शङ्का नहीं तिलमातो रे ॥ आ ॥६॥ झूंठ बोलै ते आस्रव कह्यो जिनेश्वर,

झूठ बोलें ते जीव साचातो रे। झूठ बोलै ते परि-णाम जीव तणा छै, तिण में शङ्का नहीं अंशमातो रे ॥ आ ॥७॥ चोरी करै ते आस्रव कह्यो छै, चोरी करै ते जीव साचातोरे। चोरी करवा परिणाम जीव तणा छै। तिणमें शङ्का नहीं तिलमांतो रे ॥आ॥८॥ मैथुन सेवै ते आस्रव कह्यो छै, मैथुन सेवै ते जीवो रे। मैथुन परिणाम जीव तणा छै, तिणसूं लागै छै पाप अतीवो रे ॥ आ ॥६॥ परिग्रहो राखै ते आस्रव कह्यो छै, परिग्रहो राखै ते पिण जीवो रे। जीव परिणाम छै मूर्छा परिग्रह, तिणसुं लागै छै पाप अतीवो रे ॥ आ ॥१०॥ पांच इन्द्रियां ने मोकली मेलै ते आस्रव, मोकलो मेलै ते जीव जाणो रे। राग द्वेष आवै शब्दादिक ऊपर, याने जीवरा भाव पिछाणो रे ॥ आ ॥११॥ श्रुत इन्द्री तो शब्द सुणैं छै, चक्षु इन्द्री रूप ले देखो रे। घ्राण इन्द्री गन्ध ने भोगवै छै, रस इन्द्री रसस्वाद विशेषो रे ॥ आ ॥१२॥ स्पर्श इन्द्री स्पर्श ने भोगवै छै, पांच इन्द्रियां नुं यह सुभावो रे। यासुं राग द्वेष करै ते आस्रव। तिण ने जीव कहिजे इण न्यावो रे ॥ आ ॥१३॥ तीनूं जोगांने मोकला मेलै ते आस्रव, मोकला मेलै ते जीवो रे। त्यांने अजीव कहै ते मूढ़ मिथ्याती, त्यांरा घट में नहीं

ज्ञान दीवो रे ॥ आ ॥१४॥ तीनूं जोगां रो व्यापार जीव तणो छै, ते जोग छै जीव परिणामों रे । भांठा जोग छै माठी लेश्या ना लक्षण, जोग आतमा कही छै तामो रे ॥आ॥१५॥ भंड उपगरणसूं कोई करै अजयणा, तेहिज आस्रव जाणोरे । आस्रव भाव तो जीव तणा छै, याने रूडी रीत पिछाणो रे ॥ आ ॥१६॥ सुची कुसङ्ग सेवै ते आस्रव बीसमूं, सुची कुसङ्ग सेवै ते जीवो रे । सुची कुसङ्ग सेवै तिण ने अजीव श्रद्धै छै, त्यांरै ऊंडी मिथ्यातरो नींवो रे ॥ आ ॥१७॥ द्रव्ये जोगां ने रूपी कह्या छै, ते भाव जोगांरै लारो रे ॥ द्रव्ये जोगांसूं कर्म न लागै, भाव जोग छै आस्रव द्वारो रे ॥ आ ॥ १८॥ आस्रव ने कर्म कहै छै अज्ञानी, तिण लेखै ऊंधी दरशी रे । आठ कर्मां ने चौफरशी कहै छै, कायारा जोग तो छै अठ फरशी रे ॥ आ ॥१९॥ आस्रव ने कर्म कहै त्यांरी श्रद्धा, ऊठी जठा थी झूठी रे । त्यांरा बोल्यां री ठीक पिण त्यांनै नहीं छै । त्यांरो हीया निलाडनीं फूटी रे ॥ आ ॥ २० ॥

॥ भावार्थ ॥

शास्त्रों में तो आस्रव को कर्मों का करता कहा है करता है सो जीव है जीव है सो अरूपी है, परन्तु अज्ञानी जीव भ्रम में भूल के आस्रव को अजीव कहते हैं अर्थात् कर्मों को ही आस्रव श्रद्धते हैं, लेकिन आस्रव और कर्म अलग अलग हैं, आस्रव द्वारा जीव

कर्म लगाता है तो विचारणा चाहिए कि द्वार और द्वार होके आने वाले एक कैसे हो सकता है, द्वार है सो आस्रव है जीव है अरूपी है, और आने वाले है सो कर्म है अजीव है रूपी है तो एक कैसे हुआ परन्तु मूढ़ लोग कहते हैं तीन जोग रूपी है सो जोग है सो आस्रव है तथा तीनूं जोगों को कर्म कहते हैं कर्म है सो अजीव है इसलिये आस्रव अजीव है ऐसा प्ररूपते हैं उन लोगों को आस्रव को यथार्थ समझा ने के लिये आस्रव के बीस बोलों को विस्तार पूर्वक यथातथ्य कहते हैं—

१—ऊंधी श्रद्धा अर्थात् मिथ्या श्रद्धना सोही मिथ्यात आस्रव जीव है श्रद्धा और श्रद्धने वाला एक है।

२—जो-जो सावद्य कार्य त्यागे नहीं हैं, जिन्हों की आशा वाञ्छा निरंतर लगी हुई है आतम प्रदेश अत्याग भाव पणैं परिणमें हैं उसी का नाम अव्रत आस्रव है जिस से निरन्तर पाप लगता है।

३—प्रमाद अर्थात् निरवद्य करणी से अण उत्साह पणैं जीव परिणम्यां है सो प्रमाद आस्रव है, जहांतक अप्रमाद गुणस्थान नहीं पावेगा तहांतक प्रमाद आस्रव द्वारा निरन्तर पाप लगता है।

४—क्रोध मान माया लोभ ये च्यारूं कषाय पणैं जीव परिणम्यां स कषाय आस्रव है जहां तक अकषायी न होगा तहांतक कषाय आस्रव द्वारा निरन्तर पाप लगता है इसलिये कषायी जीव का नाम कषाय आतमा है सो ही कषाय आस्रव जीव के परिणाम है।

५—मन वचन काया के जोगों का व्यापार जीव का है जोगों पणे परिणम्यां सो जोग परिणामी जीव है जोग आतमा कही है जोगों द्वारा कर्म ग्रहण करै उसी को जोग आस्रव कहते है।

६—प्राणातिपात आस्रव अर्थात् जीव हिन्सा करे, तो जीव हिन्सा करै सो जीव है, हिन्सा जीव के परिणाम है सोही प्राणातिपात आस्रव है।

७—मृषावाद आस्रव अर्थात् झूंठ बोलै सो आस्रव, झूंठ बोलै सो जीव है झूंठ बोलै सो जीव के ही परिणाम है।

८—चोरी करै ते आस्रव कहा है, चोरी करै सो जीव है, अदत्ता दान लेने को जीव प्ररिणम्या सो जीव के परिणाम हैं, तथा चोरी करने के परिणाम है सोही आस्रव है।

६—मैथुन सेवै ते आस्रव कहा है; मैथुन सेवै सो जीव है, मैथुन सेवने के परिणाम जीव के हैं सो ही आस्रव है।

१०—परिग्रहा रक्खे सो आस्रव, परिग्रहा रक्खे सो जीव है, जीव के परिणाम है सोही आस्रव है।

११—श्रोत १ चक्षु २ घ्राण ३ जिह्वा ४ स्पर्श ५ यह पांचूं इन्द्रियों को मोकलो मेलै अर्थात् शब्दादिक तेवीस विषयोंपि राग द्वेष आवै सो आस्रव है, इन्द्रियों को मोकली मेलै सो जीव है। श्रोत इन्द्री का स्वभाव ३ प्रकार के शब्द सुनने का, चक्षु इन्द्री का स्वभाव ५ प्रकार के वरण देखने का, घ्राण इन्द्री का स्वभाव २ प्रकार के गंध सूंघने का, रस इन्द्री का स्वभाव ५ प्रकार के रसों का स्वाद जानने का, और स्पर्श इन्द्री का स्वभाव ८ प्रकार के स्पर्श भोगने का है, पांचूं इन्द्रियां हैं सो तो क्षयोपशम भाव है, परन्तु इन्द्रियों की विषय में लिप्त रहना सो जीव के भाव हैं, मोह कर्मोदय से विषयी होके राग द्वेष करै सो आस्रव है जीव के परिणाम है।

१६—मन १ वचन २ काया ३ मोकली मेलै सो आस्रव कहा है अर्थात् तीनूं जोगों की प्रवर्तना जीव की है।

१९—भंडोपगरण से अजयणा करै सो आस्रव अर्थात् वस्त्र पात्र आदि वस्तुवों से अयत्ना करने के भाव जीव के हैं सोही आस्रव है।

२०—सुचि कुसङ्ग सेवै ते आस्रव जीव है जीवके परिणाम है सोही आस्रव है।

तात्पर्य उपरोक्त बीस आस्रव द्वार कहे सो जीव के परिणाम हैं

परिणाम है सोही आस्रव द्वार जीव है, मन वचन काया ये तीन प्रकार के जोग हैं सो द्रव्य जोग तो अजीव है, रूपी है, और भाव जोग है सो जीव है, अरूपी है, इसलिये ही जोग आतमा कही है, भाव जोगों के सङ्ग ही द्रव्य जोग कहे हैं, द्रव्य जोगों से तो कर्म लगते नहीं, वो तो अजीव है, और भाव जोगों से कर्म लगते हैं इससे भाव जोगों को आस्रव कहा है, कई अज्ञानी आस्रव और कर्म एक ही श्रद्धते हैं तथा तीनूं द्रव्य जोगों को आस्रव कहते हैं, मगर वे मोह अन्ध जीव अपनी भाषा के आप ही अजान हैं, क्योंकि काया का द्रव्य जोग तो आठ स्पर्शी है, और कर्म है सो च्यार स्पर्शी है, तो कर्म और जोग एक कहां ठहरा महानुभावो स्वामी श्री भीखनजी का कहना है कि आस्रव को कर्म कहै उन को श्रद्धा तो ऊंठी वहीं से भूंठी है, उनके हीये कहिये हृदय और लिलाड कहिये मगज ये दोनूं फूटे हैं अर्थात् ज्ञान चक्षु रहित हैं, जिससे हृदय और दिमाग में ऐसा नहीं विचारते हैं कि कर्म है सो क्या है तथा करता है सो कौन है, इसलिये इन दोनूं को यथा तथ्य श्रद्धाने को कृपा करिके फरमाया है कि वीस बोलों में सावद्य कितने और निरवद्य कितने हैं, तथा किस किस कर्म के उदय से जीव कैसा कैसा कर्तव्य करता है सो विस्तार पूर्वक कहते हैं—

॥ ढाल तेहिज ॥

बोस आस्रव में सोलै तो एकान्त सावद्य, ते पाप आवाना छै द्वारोरे। जीवरा कर्त्तव्य माठा ते खोटा, ते पाप तणा करतारो रे ॥ आ ॥२१॥ मन बचन कायारा जोग व्यापार, बलि समुचय जोग व्यापारो रे। ये च्यारूं ही आस्रव सावद्य निरवद्य पुन्य पाप तणा छै द्वारो रे ॥ आ ॥२२॥ मिथ्यात

अव्रतने प्रमाद, कषायने जोग व्यापारों रे। ये कर्म तणा करता जीवरै छै। पांचूं ही आस्रव द्वारो रे ॥ आ ॥२३॥ यामें च्यारूं आस्रव सभाविक उदारा, जोगमें पनरे आस्रव समाया रे। जोग कर्त्तव्य ते सभाविक पिण छै, तिणसुं जोगमें पनरे आया रे ॥ आ ॥२४॥ हिन्सा करै ते जोग आस्रव छै। झूठ बोलै ते जोग ताह्यो रे, चोरीसुं लेने सुचि कुशग सेवैते। पनरैही आया जोग मांह्यो रे॥ आ ॥२५॥ कर्मां रो करता तो जीव द्रव्य छै, कीधा हुवा ते कर्मों रे। कर्मने करता एकज श्रद्धै, ते भूला अज्ञानी भ्रमोरें ॥ आ ॥२६॥ अट्ठारह पाप ठाणा अजीव चौस्पर्शी, ते उदय आवै तिणवारो रे। जब जुवा जुवा कर्त्तव्य करै अट्ठारह, ते अठारैही आस्रव द्वारो रे॥ आ ॥२७॥ उदय आवै ते मोह कर्म छै, ते पापरा ठाणा अठारो रे। त्यांरा उदय से अट्ठारा कर्त्तव्य करै छै, ते जीव तणा व्यापारो रे ॥ आ ॥२८॥ उदय ने कर्त्तव्य जुदा जुदा श्रद्धै, आ तो श्रद्धा सूधी रे। उदयने कर्त्तव्य एकहिज श्रद्धै, अकल तिणांरी ऊंधी रे ॥ आ ॥२९॥ प्राणातिपात जीवरी हिन्सा करै ते, प्राणातिपात आस्रव जाणोरे। उदय हुवोते प्राणाति पाप ठाणो छै, त्यांने रूड़ी रीत पिछाणो रे ॥ आ ॥ ३० ॥ झूठ

बोलै ते मृषावाद आस्रव छै, उदय छै मृषावाद ठाणो-रे ॥ झूठ बोलै ते जोव उदय हुवा कर्म, यां दोनांने जुदा जुदा जाणो रे ॥ आ ॥३१॥ चोरी करै ते अदत्ता दान आस्रव छै, उदय हुआं अदत्ता दान ठाणो रे। ते उदय हुआ जीव चोरी करै छै, ते जीवरा लक्षण जाणो रे ॥ आ ॥३२॥ मैथुन सेवै ते मैथुन आस्रव; ते जीव तणा परिणामो रे। ते उदय हुआ मैथुन पाप स्थानक छै, मोह कर्म अजीव छै तामो रे ॥ आ ॥३३॥ सचित अचित मिश्र ऊपर ममता राखै, तेतो परिग्रह आस्रव जाणो रे। ते ममता करै मोह कर्म उदयसूं, उदय हुवै ते परिग्रह पापठाणो रे ॥ आ ॥३४॥ क्रोध सुं लेने मित्थ्या दर-शण लगे, उदय हुवै ते पापरो ठाणो रे। यांरा उदय से सावद्य कर्त्तव्य करै छै, ते जीवरा लक्षण जाणो रे ॥ आ ॥३५॥ सावद्य कामां तो जीवरा कर्त्तव्य, उदय हुआ ते पाप कर्मो रे। यां दोनूं ने कोई एकज श्रद्धै, ते भूला अज्ञानी भ्रमो रे ॥ आ ॥३६॥ आस्रव तो कर्म आवाना द्वार, ते जीवतणा परिणामो रे। द्वार मांहि आवै ते आठ कर्म छै। ते पुद्गल द्रव्य छै तामो रे ॥ आ ॥३७॥ माठा परिणामने माठी लेश्या, वलि माठा जोग व्यापारो रे। माठा अध्यवसायने माठा

ध्यान, ते पाप आश्रवना द्वारोरे ॥ आ ॥ ३८ ॥ भलां परिणामने भली लेश्या, भला निरवद्य जोग व्यापारों रे। भला अध्यवसायने भला ध्यान, ते पुन्य आश्रवना द्वारो रे ॥ आ ॥३९॥ भला भूंडा परिणाम भलो भूंडी लेश्या, भला भूंडा जोग छै तामोरे। भला भूंडा अध्यवसाय भला भूंडा ध्यान, ते जीव तणा परिणामों रे ॥आ॥ ४०॥ भला भूंडा परिणाम तो जीवतणा छै, भूंडा पापरा बारणा जाणो रे। भलाभाव छै ते संवर निरजरा, पुन्य सहजें लागै छै आणो रे ॥ आ ॥ ४१ ॥

॥ भावार्थ ॥

वीस आस्रव कहे जिसमें से सोलह तो एकान्त सावद्य हैं सो माठा कर्तव्य हैं इस लिये पाप आने के द्वार हैं बाकी च्यार आस्रव अर्थात् जोग मन वचन काय यह सावद्य निरवद्य दोनूं हैं सो पुन्य और पाप आने के द्वार हैं, तथा वीस आस्रवों में से मिथ्यात अव्रत प्रमाद और कषाय ये च्यार आस्रव तो स्वभाविक उदय से हो रहे हैं और प्राणातिपात आस्रव से लेके सुचि कुशग आस्रव तक पन्द्रह आस्रव हैं सो जोग आस्रव में गर्भित हैं अर्थात् हिन्सा करै सो जोग आस्रव है यावत् सुचि कुशग सेवै सो जोग आस्रव है यानें यह पन्द्रह योगों की प्रेरणा से होते हैं तथा पांचमां समुचय जोग आस्रव हैं सो योग कर्तव्य स्वभाविक भी होता है अर्थात् जहांतक सजोगी है तहांतक जोग आस्रव है, कर्मों का करता है सो जीव द्रव्य है और किये सो कर्म हैं वे अजीव हैं इसलिये कर्ता और कर्म यह दोनूं जुदे जुदे हैं; अब आस्रव कैसे होता है सो कहते हैं—प्राणातिपात पाप स्थानक से लेके मिथ्या दरशण शल्य ये अठारह पाप स्थानक हैं सो च्यार स्पर्शिया पुद्गलों का

पुंज है सो अजीव है मोह कर्म के भेद हैं यह जब जीव के उदय आते हैं तो जीव इनमें प्रवर्तता है तब अशुभ कर्म ग्रहण करता है जिस से जीव को आस्रव कहा है, जैसे जीव के प्राणातिपात पाप स्थानक उदय हुआ सो तो अजीव और उसमें प्रवर्त्या सो जीव उदय भाव प्राणातिपात आस्रव है, ऐसे ही अट्ठारह को जानना, तात्पर्य उदय और कर्तव्य यह दोनूं जुदे जुदे हैं इनको पृथक पृथक समझें यह श्रद्धा तो सूधी है और इन्हें एक ही श्रद्धै यह श्रद्धा ऊंधी अर्थात् विरुद्ध है इसलिये न्याय दृष्टि करिके विचारणा चाहियें कि आस्रव है सो कर्म आने के द्वार है जीव के व्यापार हैं और द्वारों में होके आने वाले कर्म हैं वे अजीव हैं, परन्तु आस्रव द्वार जीव है, खोटे मन परिणाम, खोटी लेश्या, खोटे जोग व्यापार, खोटे अध्यवसाय, खोटे ध्यान हैं सो यह सब जीव परिणाम है पाप आने के द्वार हैं; भले मन परिणाम यावत् भला ध्यान यह सब जीव के परिणाम और पुण्य आने के द्वार हैं, पुण्य पाप आने के द्वार हैं सो ही आस्रव है।

॥ ढाल तेहिज ॥

निरजरारी करणी निरवद्य करतां, कर्म तणूं क्षय जाणो रे। जीव तणा प्रदेश चलै छै, त्यासुं पुन्य लागै छै आणो रे ॥ आ ॥४२॥ निरजरारी करणी करै तिण काले, जीवरा चलै सर्व प्रदेशोरे। जब संचर नाम कर्म उदय भाव, तिण सूं पुन्य तणूं छै प्रवेशो रे ॥ आ ॥४३॥ मन वचन कायारा जोग तीनूं ही, पसस्थने अपसस्थ चाल्यारे। अपसस्थ जोग तो पापरा द्वार, पसस्थ निरजरारी करणी में घाल्या रे

॥ आ ॥४४॥ अपसस्थ द्वार तो रुंधणां चाल्या, पसस्थ-उदीरणा चाल्यारे, रूंधतां उदीरतां निरजरारी करणी । पुन्य लागै तिण सूं आस्त्रव में घाल्या रे ॥ आ ॥४५॥ पसस्थ अपसस्थ छै जोग तीनूं ही, त्यांरा बासठ भेद छै ताह्यो रे । ते सावद्य निरवद्य जीवरी करणी, ते सूत्र उववाई मांह्यो रे ॥ आ ॥४६॥ जिन कह्यो सतरे भेद असंजम, असंजम ते अव्रत जाणो रे । अव्रत ते आशा वंछा जीव तणी छै, त्यांनें रूडी रीत पिछाणो रे ॥ आ ॥४७॥ माठा २ कर्तव्य माठी २ करणी, सर्व जीव तणा व्यापारो रे । जिन आज्ञा बाहरला सर्व कामा ते, सघला ही आस्त्रव द्वारो रे ॥ आ ॥४८॥ मोह कर्म उदय जीवरै च्यार संज्ञा, ते पाप कर्म ग्रहै ताणोरे । पाप कर्मा ने ग्रहै ते आस्त्रव छै, ते जीवरा लक्षण जाणोरे ॥ आ ॥ ४९ ॥ उठाण कम्म बल वीर्य पूर्षाकार प्राक्रम, यांरा सावद्य व्यापारो रे । तिण सूं पाप कर्म जीवरै लागै छै, ते पिण जीव छै आस्त्रव द्वारो रे ॥ आ ॥५०॥ उट्ठाण कम्म बल वीर्य पूर्षाकार प्राक्रम, यांरा निर-वद्य व्यापारो रे । त्यासुं पुन्य कर्म जीवरै लागै छै, ते पिण जीव छै आस्त्रव द्वारो रे ॥ आ ॥५१॥ संजती असंजती संजतासंजती, ते तो संवर आस्त्रव द्वारोरे ।

ते संबर ने आस्रव दोनूं ही तिण में, शङ्का नहीं छै लिगारो रे ॥ आ ॥५२॥ इम ब्रती अब्रती ने ब्रताब्रती, इम पचखाणी जाणो रे। इम पंडिया बाला ने बाल पंडिया, जागरा सूता एम पिछाणो रे ॥आ॥५३॥ इम संबूडा असंबूडाने संबूडाअसंबूडा धम्मिया अधम्मिया नामो रे। धम्म वचसाईया इम हिज जाणो, तीन २ बोल छै तामोरे ॥ आ ॥५४॥ ये सघला बोल छै आस्रव ने संबर, त्यांने रूडी रीत पिछाणो रे। केई आस्रव ने अजीव श्रद्धै छै, ते पूरा छै मूढ अयाणोरे ॥ आ ॥ ५५ ॥ आस्रव घटियां संबर बधै छै, संबर घटियां आस्रव बधाणो रे। किसो द्रब्य बधियो किसो द्रब्य घटियो, इण ने रूडी रीत पिछाणो रे ॥ अ ॥५६॥ अब्रत उदय भाव जीवरा घटियां, ब्रत बधै क्षयोपशम भावो रे। ये जीव तणा भाव घटिया ने बधिया। आस्रव जीव कह्यो इण न्यायो रे ॥ आ ॥ ॥५७॥ इम सतरै भेदे असंजम ते अब्रत आस्रव, ते आस्रव निश्चय जीव जाणो रे, सतरे भेद संजम ने संबर कह्यो जिन। ते जीवरा लक्षण पिछाणो रे ॥ आ ॥५८॥ आस्रवने जीव श्रद्धावण काजे, जोड़ कीधी पाली शहर मझारो रे। सम्वत् अठारह पचावन बर्षे, आसोज सुद चौदश भौमवारो रे ॥ आ ॥५९॥

॥ भावार्थ ॥

निरजराकी करणी निरवद्य करते वक्त जीवके सर्व प्रदेश चलायमान होते हैं तव अनन्त कर्म प्रदेशोंके पुञ्जके पुञ्ज आतम प्रदेशोंसे क्षय अर्थात् अलग होते हैं वो तो निरजरा याने निरमला जीव है और उसकी करणी करते संवर नाम कर्मोदय से जीवके उदय भाव निष्पन्न होने से भले जोगों की वर्तनां होती है तव पुण्यमयी शुभ कर्मो को जीव ग्रहिता है सो आस्रव है, तात्पर्य मन वचन काया के शुभ योगोंसे निरजरा होती है इसलिये तो निरजरा की करणी मे यह गर्भित है सो नवपदार्थों में छट्ठा निरजरा पदार्थ जीव है, और इन्हीं योगोंसे पुण्य ग्रहण होते हैं जिससे पांचमां आस्रव पदार्थ के बोलोंमें है, कर्मों को करता है सोही आस्रव जीव है, मन वचन कायाके जोगोंको प्रशस्त अप्रशस्त कहा है प्रशस्त जोग तो पुण्यके द्वार हैं और अप्रशस्त जोग पापके द्वार हैं, प्रशस्त द्वारोंको तो शास्त्र में उदीरणा अर्थात् उद्यम करिके उदयमें लाना और अप्रशस्त द्वारोंको रूंधना अर्थात् वंध करना कहा है, उदीरतां या रूंधतां निरजरा हो सो तो निरजरा की करणी है और उदय भावके जोग वर्तते हैं जिन्होंसे कर्म ग्रहण होते हैं वोह भाव जोग आस्रव है, श्री उववाई सूत्र में प्रशस्त अप्रशस्त जोगोंके वासठ भेद कहे हैं, तथा भगवतने सतरह भेद असंजम कहा है असंजम है सो अव्रत है और अव्रत है सो आस्रव है, माठे २ कर्त्तव्य और करणी यह जीव का व्यापार है, मोह कर्म के उदय से च्यार संज्ञा है सो जीव है जिससे पाप कर्म लगता है, तथा उट्ठाण कम्म (कर्त्तव्य) वल वीर्य पुर्षाकार प्राक्रम को आत्मा कही है, सावद्य है सो तो पापके करता हैं और निरवद्य है सो पुण्य के करता है, करता है सोही आस्रव है, संयती १, असंयती २ संजतासंजती ३, व्रती १ अव्रती २ व्रताव्रती ३, पचखानी १ अपचखानी २ पचखानापचखानी ३ पण्डिता १ वाला २ वालापण्डिता ३ जागता १ सूता २ जागतासूता

३ संवूडा १ असंवूडा २ संवूडाअसंवूडा ३, धर्मी १ अधर्मी २ धर्माधर्मी ३, इत्यादिक अनेक तरहसे तीन २ बोल कहे हैं सो सर्व बोल आस्रव तथा संवर है, अर्थात् संजती है सो संवर है असंजती आस्रव है और संजतासंजती आस्रव संवर दोनूं है, ऐसे ही सब बोल जानना, तात्पर्य आस्रव कम होने से संवर वधता है और संवर कम होनेसे आस्रव वधता है, विवेकी जीवों को विचारणा चाहिये कि कौनसा द्रव्य घटा और कौनसा वधा, संवरका प्रतिपक्ष आस्रव है, आस्रव का प्रतिपक्ष संवर है, यदि आस्रव अजीव है तो संवर भी अजीव है जो संवर जीव है तो आस्रव भी जीव है, सतरह प्रकार का संजम है सो तो व्रत संवर द्वार है और वही सतरह प्रकार का असंजम है सो अव्रत आस्रव द्वार है, स्वामी श्री भीखनजी का कहना है कि न्यायवादी और मोक्षाभिलाषी जीवोंको निरपक्ष होके आस्रव पदार्थको यथातथ्य श्रद्धना चाहिये तब समदृष्टि होंगे, आस्रव पदार्थ को जीव श्रद्धाने को पाली शहर में ढाल जोड़के कहा है, सम्वत् १८५५ आसोज सुद १४ मंगलवार, जिसका भावार्थ मेरी तुच्छ बुद्धि प्रमाण किया इसमें कोई भी अशुद्धार्थ हुआ हो उसका मुझे वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं है।

॥ इति पञ्चम आस्रव पदार्थ ॥

॥ अथ षष्टम संवर पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

संवर पदार्थ छट्ठो कह्यो, तिणरा थिर भूत प्रदेश। आस्रव द्वारने रूंधणों, तिण सूं मिट जाय कर्म प्रवेश ॥ १ ॥ आस्रव द्वार कर्म आवाना वारणां, ते ढांकै संवर द्वार। आतम वस कियां संवर हुवै, ते

गुण रतन श्रोकार ॥२॥ संवर पदार्थ ओलख्यां विना, संवर न निपजे कोय। शंका कोई मत राखजो. सूत्र सहामों जोय ॥ ३ ॥ ते संवर तणा पांच भेद छै, त्यां पांचांरा भेद अनेक। त्यांरा भाव भेद प्रगट कहूं, ते सुणिजो आणि विवेक ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

(पूजजी पधारो हो नगरी सेविया पदेशी)

नवही पदार्थ श्रद्धै यथा तथ्य, तिणने कहीजे समकित निधान हो। भविकजन। पछै त्याग करै ऊंधा श्रद्धण तणा, ते समकित संवर प्रधान हो। भ। संवर पदार्थ भवियण ओलखो ॥ १ ॥ त्याग किया सर्व सावद्य जोगरा, जावज्जीव पचखाण हो। भ। आगार नहीं त्यांरे पाप करण तणो, ते सर्व व्रत संवर जाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ २ ॥ पाप उदय सूं जीव प्रमादी थयो, तिण पाप सूं प्रमाद आस्रव थाय हो। भ। ते पाप उपशम हुयां के खय हुयां, अप्रमाद संवर हुवै ताय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ३ ॥ कषाय कर्म उदय छै जीव रै, तिणसूं कषाय आस्रव छै ताम हो। भ। कषाय कर्म अलगा हुयां जीवरै, अकषाय संवर हुवै आम हो ॥ भ॥ सं ॥४॥ थोड़ा थोड़ा सावद्य जोगां ने रूंधियां,

अजोग संबर नहिं थाय हो । भ । मन वचन काया रा जोग रूंधे सर्वथा, जब अजोग संबर हुवै ताय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५ ॥ सावद्य जोग माठा रूंधे सर्वथा, जब तो सर्व व्रत संबर होय हो । भ । पिण निरवद्य जोग बाकी रह्या तेहने, तिणसूं अजोग संबर नहिं कोय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ६ ॥ प्रमाद आस्रव ने कषाय जोग आस्रव, यह तो नहिं मिटै कियां पच्चखाण हो । भ । ये तो सहझें मिटै छै कर्म अलगा हुयां, तिणरी अन्तरङ्ग कीजो पिछाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ ७ ॥ शुभ ध्यान ने लेश्या सूं कर्म कटियां थकां, जब अप्रमाद संबर थाय हो । भ । इमहिज करतां अकषाय संबर हुवै, इम अजोग संबर होय जाय हो ॥ भ ॥ सं ॥८॥ समकित संबर ने सर्व व्रत संबर, ये तो हुवै छै कियां पच्चखाण हो । भ । अप्रमाद अकषाय अजोग संबर हुवै, ते तो कर्म खय हुवां जाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ ९॥ हिंसा झूंठ चोरी मैथुन परिग्रहो, ये तो जोग आस्रव समाय हो । भ । ये पांचूंही आस्रव ने त्यागे दियां, जब व्रत संबर हुवै ताय हो ॥ भ ॥ सं ॥ १० ॥ पांच इन्द्रियां ने मेलै मोकली, त्यांने पिण जोग आस्रव जाण हो । भ । पांच इन्द्री मोकली मेलवारा त्याग छै, ते पिण व्रत संबर ल्यो पिछाण हो ॥भ॥ सं ॥११॥

भला भूंडा कर्तव्य तीनूं जोगां तणा, ते तो जोग आस्त्रव छै ताम हो। भ। त्यां तीनूं ही जोगां ने जावक रूंधियां, जब अजोग संवर हुवै आम हो॥ भ॥ सं॥ १२॥ अजयणा करै भरड उपग्रण थकी, तिण ने पिण जोग आस्त्रव जाण हो। भ। सुचि-कुशग सेवै ते जोग आस्त्रव कह्यो, त्यांने त्याग्यां संवर व्रत पिछाण हो॥ भ॥ सं॥ १३॥ हिन्सादिक पंद्रे तो जोग आस्त्रव कह्या, त्यांने त्याग्यां व्रत संवर जाण हो। भ। त्यां पंद्रांने माठा जोग मांहि गिणया, निरवद्य जोगां री करिज्यो पिछाण हो॥भ॥ सं॥१४॥ तीनूं ही निरवद्य जोग रूंध्यां थकां, अजोग संवर होय जात हो। भ। ये वीसूं ही संवर तणो व्योरो कह्यो, ते वीसूंही पांच संवर में समात हो॥ भ॥ संवर॥ १५॥

॥ भावार्थ ॥

अब छट्ठा संवर पदार्थ कहते हैं आतम प्रदेशों को संवरै सो संवर अर्थात् आते कर्मों को रोकना और जीव के प्रदेशों को स्थिर करना उसी का नाम संवर है, तात्पर्य जीव के प्रदेश कर्मोदय से चलाचल होते हैं तब नूतन कर्मों को ग्रहण करते हैं इसलिये आस्त्रव द्वार कहा है और वही प्रदेश स्थिर होते हैं इसलिये उन्हीं जीव के प्रदेशों का नाम संवर द्वार है, तबही कहना है कि संवर को यथातथ्य जाने विना संव

नहीं निपजता है, मुख्य पांच प्रकार के संवर हैं इन पांचों के अनेक भेद हैं सो विस्तार पूर्वक कहते हैं :—

१—नव पदार्थों को यथातथ्य श्रद्ध कर अयथार्थ श्रद्धने का त्याग करें सो सम्यक् संवर है।

२—सर्व सावद्य जोगों का त्याग करें अर्थात् पाप करने का आगार किञ्चित् नहीं तब सर्व संवर होता है।

३—पाप कर्म के उदय से जीवप्रमादी है इसलिये प्रमाद आस्रव हो रहा है, वही उपशम या क्षय होय तब अप्रमाद संवर होता है।

४—ऐसे ही कषाय कर्म जहांतक जीव के उदय है तहांतक कषाय आस्रव है, वही कषाय कर्म प्रकृति जीवके प्रदेशों से अलग होय तब अकषाय संवर होता है।

५—जोग आस्रव के दो भेद हैं, अशुभ और शुभ योग, थोड़े २ अशुभ योगों को या सर्वथा अशुभ योगों को रूंधने से अयोग संवर नहीं होता हैं, अयोग संवर तो शुभ और अशुभ दोनूं ही प्रकार के योग सर्वथा रूंधै तब होता है।

उपरोक्त पांचो संवर कहे सो जिसमें से सम्यक् संवर और व्रत संवर यह तो ऊंधी श्रद्धने और सर्वथा सावद्य योगों के त्याग करने से होता है, और बाकी तीन संवर त्याग करने से होते नहीं अर्थात् स्वतः ही कर्म क्षय होने से होते हैं।

हिन्सा झूंठ चोरी मैथुन परिग्रह तथा पांचों इन्द्रियों को मोकली मेलना मन वचन काया के जोग और भंडोपग्रण से अजयणा करना तथा सुचि कुशंग सेना यह पंद्रे ही जोग आस्रव है इनको त्यागने से व्रत संवर होता है, अजोग सम्वर तो सर्वथा जोग रूंधने से चौदवें गुणस्थान है।

॥ ढाल तेहिज ॥

केई कहै कषाय ने जोग आस्रव तणा, सूत्र में चाल्या पचखाण हो । भ । त्यांने त्याग्यां बिना संवर किण विध हुवै, हिव तिणरी कहूं छूं पिछाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ १६ ॥ पचखाण चाल्या छै सूत्र में शरीर रा, ते शरीर सूं न्यारो हुवां ताम हो । भ । इमहिज कषाय ने जोग पचखाण छै, शरीर पचखाण ज्यूं आम हो ॥ भ ॥ सं ॥ १७ ॥ सामायक आदि चारित्र पांचूं भणी, सर्व व्रत संवर जान हो । भ । पुलाक आदि छहूं नियंठा, ए पिण संबर जान हो ॥ भ ॥ सं ॥ १८ ॥ चारितावरणी खयोपशम हुयां, जब जीव ने आवै वैराग हो । भ । तब काम ने भोग थकी विरक्त हुवै, जब सब सावज दे त्याग हो ॥ भ ॥ सं ॥ १९ ॥ सर्व सावज जोगां ने त्यागै सर्वथा, ते सर्व व्रत संबर जाण हो । भ । जब अव्रत रा पाप न लागै सर्वथा, ते तो चारित्र छै गुणखाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ २० ॥ धुर सूं तो सामायक चारित्र आदर्यो, तिणरै मोह कर्म उदय रह्या ताय हो । भ । ते कर्म उदय से कर्तव्य नीपजै, तिण सूं पाप लागै छै आय हो ॥ भ ॥ सं ॥ २१ ॥ भला ध्यान ने भली लेश्या थकी, मोह

कर्म उदय थी घट जाय हो । भ । ते उदय तणा कर्तव्य पिण हलका पडै, जब हलका ही पाप लगाय हो ॥ भ ॥ सं ॥ २२ ॥ मोह कर्म जावक उपशम हुवै, जब उपशम चारित्र हुवै ताय हो । भ । जब जीव हुवै शीतली भूत निरमलो, तिणरै पाप न लागै आय हो ॥ भ ॥ सं ॥ २३ ॥ मोहणी कर्म तो जावक खय हुवै, जब क्षायक चारित्र हुवै यथाख्यात हो । भ । जब शीतली भूत हुवै निरमलो, तिणसूं पाप न लागै अंशमात हो ॥ भ ॥ सं ॥ २४ ॥ सामायक चारित्र लियो छै उदेरि ने, सावज जोग रा करै पचखाण हो । भ । उपशम चारित्र आवै मोह उपशमियां, ते चारित्र इग्यारमें गुणठाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ २५ ॥ खायक चारित्र आवै कर्म ने खय कियां, ते न आवै कियां पचखाण हो । भ । ते आवै शुक्ल ध्यान ध्यायां थकां, चारित्र छेहला तीन गुणठाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ २६ ॥ चारित्रावरणी क्षयोपशम हुयां, क्षयोपशम चारित्र आवै निधान हो । भ । उपशम हुवां उपशम चारित्र हुवै, खय हुयां क्षायक चारित्र प्रधान हो ॥ भ ॥ सं ॥ २७ ॥ चारित्र निज गुण जीवरै जिन कह्यो, ते जीवसूं न्यारा नहिं ताय हो । भ । मोह कर्म अलग हुवां प्रगट्या, त्यांरा गुण सूं हुवा मुनिराय हो ॥ भ ॥ सं ॥ २८ ॥

॥ भावार्थ ॥

कोई कहै कषाय और जोग के पचखाण सूत्र में कहे हैं तो फिर अकषाय सम्वर त्याग करने से क्यों नहीं होता है जिसका उत्तर यह है कि सूत्र में तो शरीर के पचखाण कहे हैं लेकिन शरीर के पचखाण कैसे हो सकते हैं क्योंकि यह शरीर तो जीव के चर्म श्वाशोश्वाश पर्यन्त है तब त्याग कैसे होय परन्तु शरीर से अशुभ योग न वर्ताला या शरीर की सार सम्भार न करना ये त्याग होते हैं वैसेही कषाय न करना प्रमाद न करना योगों की चंचलता को रोकना ये त्याग होते हैं, क्योंकि कषाय और प्रमाद करना ये जोगों की प्रवर्तना है इसलिये इन्हें त्यागने से साधु के व्रत सम्वर पुष्ट होता है परन्तु कषाय और प्रमाद के त्याग करने से अकषाय तथा अप्रमाद सम्वर नहीं होता है, ऐसे ही सर्व सावद्य योगों को त्याग कर किञ्चित किञ्चित शुभ जोगों को रूंधने से अजोग सम्वर नहीं होता, अजोग सम्वर तो सर्वथा प्रकार जोगों को रूंधने से होता है, सर्व सावद्य जोगों को सर्वथा प्रकार त्यागने से सर्व व्रत सम्वर होके सर्वथा प्रकार अव्रत के पाप नहीं लगते हैं, अवल में सामायक चारित्र आदरते हैं उनके मोह कर्म उदय रहने से जो कर्तव्य करें जिससे पाप कर्म लगते हैं और मोह कर्म का उदय भला ध्यान भली लेश्या से घटावै अर्थात् कम करै तब उदयीक कर्तव्य भी हलके होते हैं, तब पाप भी हलके लगते हैं, मोह कर्म को उपशमाने से उपशम चारित्र और क्षय करने से क्षायक चारित्र निपजता है तब किञ्चित् भी पाप नहीं लगता है जब जीव निरमल शीतली भूत हो जाता है, तात्पर्य सामायक चारित्र उदीर कर लेते हैं जिससे सर्व सावद्य जोगों को त्याग करते हैं और उपशम तथा क्षायक चारित्र पचखने से नहीं आता है, उपशम चारित्र तो सम्पूर्ण मोह कर्म को उपशमाने से और क्षायक चारित्र शुक्ल ध्यान ध्यानें से सम्पूर्ण मोह कर्म को क्षय करै तब यथा-क्षात चारित्र आता है सो बारवें तेरवें चौदशवें गुणस्थान है, चारित्र जीव का निज गुण है सो मोह कर्म अलग होने से प्रगट होता है

चारित्र के गुणों से जीव मुनिराज हुआ है इस गुण के प्रगट होनेसे अनुक्रमे सर्व कर्मों से मुक्त हो जाता है, श्रीजिनेश्वर देवने चारित्र को जीव का निज गुण कहा है सो जीव से अलग नहीं है अर्थात् जीव के गुण हैं सो जीव है।

॥ ढाल तेहिज ॥

चारित्रावरणी तो मोहणी कर्म छै, तिणरा छै अनन्त प्रदेश हो। भ। तिणरा उदासूं निज गुण बिगड़िया, तिणसूं जीवने अत्यन्त क्लेश हो। भ। सं ॥ २८ ॥ तिण कर्मरा अनन्त प्रदेश अलगा हुवां, जब अनन्त गुण उज्वल थाय हो। भ। जब सावद्य जोग पचख्या छै सर्वथा, ते सर्वव्रत संबर ताय हो। भ। सं। ॥ २६ ॥ जीव ऊजलो हुयो ते हुई निरजरा, ते व्रत संबर सूं रुकिया पाप कर्म हो। भ। नवा पाप न लागै व्रत संबर थकी, एहवो छै चारित्र धर्म हो। भ। । सं ॥ ३० ॥ जिम जिम मोहनीय कर्म पतलो पड़ै, तिम तिम जीव उज्वल थाय हो। भ। इम करतां मोहनीय कर्म खय हुवे सर्वथा, जब यथाख्यात चारित्र हो जाय हो। भ। सं ॥३१॥ जघन्य सामायिक चारित्र तेहनां, अनन्त गुण पजवा जाण हो। भ। अनन्त कर्म प्रदेश उदै था सो मिट गया, तिणसूं अनन्त गुण प्रगट्या आण हो। भ॥ ३२ ॥ जघन्य

सामायिक चारित्रया तणा, अनन्त गुण उज्वल प्रदेश हो। भ। वलि अनन्त प्रदेश उदय था ते मिट गया, जब अनन्त गुण ऊजलो विशेष हो। भ ॥३३॥ मोह कर्म घटै छै उदा थी इणविधे, तेतो घटै छै असंखेज वार हो। भ। तिण सूं सामायिक चारित्ररा कह्या, असंख्याता थानक आकार हो। भ ॥ ३४ ॥ अनन्त कर्म प्रदेश उदय था ते मिट गया, जब चारित्र थानक नीपजै एक हो। भ। चारित्र गुण पजवा अनंता नीपजै, सामायिक चारित्ररा भेद अनेक हो। भ। सं ॥ ३५ ॥ जघन्य सामायिक चारित्र तेहना, पजवा अनन्ता जाण हो। भ। तिण थी उत्कृष्टा सामायिक चारित्र तणा, पजवा अनन्त गुणा वखाण हो। भ। सं ॥३६॥ पजवा उत्कृष्टा सामायिक चारित्र तणा, तिण थी सूक्ष्म संपरायरा विशेष हो। भ। अनन्त गुण कह्या छै जघन्य चारित्र तणा, सूक्ष्म संपराय रयो पेख हो। भ। सं ॥३७॥ छट्ठा गुणठाणा थकी नवमां लगै, सामायिक चारित्र जाण हो। भ। असंख्याता थानक पजवा अनन्त छै, सूक्ष्म संपराय दशमें गुणठाण हो। भ। सं० ॥३८॥ सूक्ष्म संपराय चारित तेहना, थानक असंखेज जाण हो। भ। इक इक थानकरा पजवा अनन्त छै, सामायक चारित

ज्यूं लोज्यो पिछाण हो । भ । सं ॥३९॥ सूक्ष्म चारित्रयारै शेष उदय रह्या, मोह कर्मरा अनन्ता प्रदेश हो । भ । ते अनन्ता प्रदेश खिरयां निरंजरा हुई । बाकी उदय नहीं रह्यो लवलेश हो । भ । स ॥ ॥ ४० ॥ जब यथाख्यात चारित प्रगट हुवो । तिण चारित्ररा पजवा अनन्त हो । भ । सूक्ष्म सम्परायरा उत्कृष्टा पजवा थकी, अनन्त गुणा कह्या भगवन्त हो । भ । सं ॥४१॥ यथाख्यात चारित्र ऊजलो हुवो सर्वथा, तिण चारित्र रो थानक एक हो । भ । अनंता पजवा छै तिण थानक तणा, ते थानक छै उत्कृष्टो विशेष हो । भ । सं ॥४२॥ मोह कर्म प्रदेश अनन्ता उदय हुवा, ते तो पुद्गलँरी पर्याय हो । भ । तै अनन्ता अलगा हुवां अनन्ता गुण प्रगटै, ते निज गुण जीवरा छै तहाय हो । भ । सं ॥४३॥ ते निज गुण जीवरा भाव जीव छै, ते निज गुण छै वंदनीक हो । भ । तेतो कर्म खय हुवां सुंनीपना, भाव जीव कह्या त्यांनै ठीक हो । भ । सं ॥४४॥

॥ भावार्थ ॥

चारित्रावरणी अर्थात् चारित्र गुणके आडा आवरण सो चारित्रावरण जो मोहनीय कर्म है जिसके अनन्ते प्रदेश जीवके उदय होनेसे चारित्रमयी निज गुण खराब हो रहा है जिससे जीवको अत्यन्त क्लेश है इसके अलग होनेसे चारित्र गुण अनन्तगुणा उज्वल होता है,

सर्वथा प्रकार सावद्य जोगों को प्रत्याख्यान प्रज्ञा से पचखने से सर्व व्रत निपजता है, संयमी होने से जीव उज्वल हुवा सो तो निरजरा है, और संवर से नवीन पाप कर्म नहीं लगें सो सर्व व्रत चारित्र, ज्यों ज्यों मोहनीय कर्म हलका अर्थात् कम होगा त्यों त्यों जीव उज्वल होके चारित्र गुणकी वृद्धि करेगा, ऐसे मोहनीय कर्म को क्षय करते २ सर्व मोह कर्म क्षय हो जाने से यथाक्षात चारित्र होता है। जिस जीवके कर्म थोड़े होते हैं उसे वैराग्य भाव उत्पन्न होता है तब संसार को असार जानके प्रथम सामायिक चारित्र आदरता है अर्थात् पञ्च महाव्रत अङ्गीकार करिके भले अध्यवसायों से मोहनीय कर्म के प्रदेशों को क्षय करता है तब एक संयम स्थानक निपजता है अनन्त प्रदेशों का क्षय होनेसे अनन्तगुणाँ उज्वल चारित्र हुआ इससे एक संयम स्थानक की अनन्ती पर्याय है, इसी तरह मोहनोय कर्म को असंख्यात वार क्षय करता हैं इसलिये सामाइक चारित्र के असंख्याता संयम स्थानक हैं और एक एक संयम स्थानक की अनन्ती अनन्ती पर्याय है, जघन्य सामायक चारित्र की पर्याय से उत्कृष्ट सामायक चारित्र की पर्याय अनन्त गुण अधिक है छट्ठा गुणस्थान से नवमा गुणस्थान लग सामायक चारित्र है ऐसे छेदोस्थापनी चारित्र के स्थानक और पर्याय जानना, दशमें गुणस्थान सूक्ष्म सम्पराय चारित्र है जिसके भी असंख्याता संयम स्थानक और अनन्ती पर्याय है, सूक्षम सम्पराय चारित्रिया के मोहनोय कर्म के अनन्ते प्रदेश शेष रहे हुए सर्व प्रदेश आतम प्रदेशों से एकदम अलग होता है तब द्वादशम गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र प्रगट होना है, मोहनीय कर्म के सर्व प्रदेशों को एक ही वक्तमें क्षय किया इस लिये यथाक्षात चारित्र का एक ही संयम स्थानक है और उसकी सबसे अधिक अनन्ती पर्याय है, सामायक छेदोस्थापनीय पड़िहार विशुद्ध और सूक्ष्म संपराय इन च्यार चारित्रों के तो असंख्याता असंख्याता संयम स्थानक है अर्थात् इन चारित्र वालो ने

मोहनीय कर्म के प्रदेशों को पूर्वोक्त रीति से असंख्याता २ वार खपाते हैं जिससे चारित्र गुण अधिकाधिक अनन्त गुणा निरमल होता है सोही अनन्ती पर्याय है, सबसे थोड़ी तो सामायक छेदोस्थापनीय चारित्र की जघन्य पर्याय (पज्झव) है, जिससे अधिक पड़िहार विशुद्ध चारित्र की जघन्य पर्याय अनन्त गुणी है, जिससे अधिक पड़िहार विशुद्ध चारित्र की उत्कृष्टी पर्याय अनन्त गुणी है जिससे अधिक सामायक और छेदोस्थापनीय चारित्र की उत्कृष्टी पर्याय अनन्त गुणी है, जिससे अधिक सूक्ष्म संपराय चारित्र की जघन्य पर्याय अनन्त गुणी है, जिससे अधिक सूक्ष्म संपराय चारित्र की उत्कृष्टी पर्याय अनन्त गुणी है, जिससे अधिक यथाक्षात चारित्र की पर्याय अनन्त गुणी है, तात्पर्य सबसे जियादह यथाक्षात चारित्र निर्मला है ये चारित्र वारवें तेरवें गुणस्थान है।

॥ ढाल तेहिज ॥

सावद्य जोगरा त्याग करिने रूंधिया, तिण सुं व्रतसंबर हुवो जाण हो । भ । निरवद्य जोग रूंध्यां संबर हुवै, तिणरी बुद्धिवंत करिजो पिछाणहो ॥ भ ॥ ॥ ४५ ॥ निरवद्य जोग मनवचन काया तणा, ते घटियां थी संबर थायहो । भ । सर्वथा घटियां अजोग संबर हुवै, तिणरो व्योरो सुणो चित्तल्याय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ४६ ॥ साधुतो उपवास बेला-दिक तप करै, ते कर्म काटणरे काम हो । भ । जब सहचर संबर साधुरे नीपजै, निरवद्य जोग रूंध्यां सुं तामहो ॥ भ ॥ सं० ॥ ४७ ॥ श्रावक उपवास

बेलादिक तपकरै. ते पिण कर्म काटणरै काम हो । भ । जब व्रतसंवर पिण सहचर नीपजै, सावद्य जोग रूंध्यां ताम हो ॥ भ ॥ सं ॥ ४८ ॥ श्रावक जे जे पुद्गल भोगवै, ते सावद्य जोग व्यापार हो । । भ । यांरो त्याग कियांथो व्रत संवर हुवै. तप पिण नीपजे लारहो ॥ भ ॥ सं ॥ ४६ ॥ साधुतो कल्पै ते पुद्गल भोगवै, ते निरवद्य जोग व्यापार हो । भ। त्यानें त्याग्यां थो तपस्या नीपनी, जोग रूंध्यां ते संवर श्रीकार हो ॥ भ ॥ ५० ॥ साधूरो हालवो चालवो वोलवो, ते निरवद्य जोग व्यापार हो । भ । निरवद्य जोग रूंध्यां जितलो ही संवर हुवै, तपस्या पिण नीपजै श्रीकार हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५१ ॥ श्रावक रो हालवो चालवो वोलवो, ते सावद्य निरवद्य व्यापार हो । भ । सावद्यरा त्याग सुं तो व्रत संवर हुवैं । निरवद्य त्याग्यां संवर श्रीकार हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५२ ॥ चारित ने तो व्रत संवर कह्यो, ते तो अव्रत त्याग्यां होय हो । भ । अजोग संवर शुभ जोग रूंध्यां हुवै, तिण में शंका नहिं कोय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५३ ॥ संवर निज गुण निश्चय जीवरो, तिणने भावजीव कह्यो जगनाथ हो । भ । जिण द्रव्य ने भाव जीव नहिं ओलख्यो, तिणरा घट में सुं न गयो मिथ्यात

हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५४ ॥ संवर पदारथ नें ओलखा-यवा, जोड कीधी श्रीजी द्वारा मझार हो । भ । सम्वत् अठारे नें छपना वर्ष में, फागण बिद तेरस शुक्रवार हो ॥ भ ॥ सं० ॥ ५५ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सावद्य जोग वर्त्तने के त्याग करके सावद्य जोगों को रूंधने से व्रत संवर होय, और निरवद्य जोग देशतः रूंधने से संवर और सर्व रूंधने से अजोग संवर होता है। साधु मुनिराज आहार पाणी आदि कल्पनीय द्रव्य भोगते हैं सो निरवद्य जोग हैं तथा श्रावक भोगता है सो सावद्य जोग है, इसलिये श्रावक उपवास बेला आदि तप करैं जिसमें आहार पानी भोगने का त्याग किया जिससे सहचर व्रत संवर होता है, और साधु आहार पानी आदि भोगने का त्याग करैं तब उनके भी संवर होता है, जब कोई कहै साधु आहार पानी करैं जिससे पाप नहीं लगै तो फिर संवर किस तरह हुआ जिसका उत्तर यह है कि पाप स्रवै सोही आस्रव नहीं हैं आस्रव तो पुण्य को भी स्रवता अर्थात् ग्रहण करता है और पाप को ग्रहण करता है इसलिये साधू आहार पानी भोगने के शुभ जोगों को रूंधने से पुण्य कर्म के आने के द्वार को रूंध्या सो संवर हुआ और श्रावक पाप कर्म के आने के द्वार जो आहार पानी भोगने के अशुभ जोग द्वार रूंध्या जिससे संवर हुआ तात्पर्य श्रावक का हालना चालना बोलना खाना पीना आदि कर्त्तव्य है सो सावद्य जोग व्यापार और साधू के यही कर्त्तव्य निरवद्य जोग व्यापार है, श्रावक के सावद्य को त्यागने से व्रत संवर और निरवद्य के त्यागने से संवर होता है, चारित्र है सो व्रत संवर है सो अव्रत को त्यागने से होता है और अजोग संवर सर्व निरवद्य जोगों को रूंधै तब होता है। संवर है सो जीवका निज गुण है भाव जीव है सोही स्थिर प्रदेश है। छट्ठा संवर पदार्थ

को ओलखाने के निमित्त स्वामी श्री भीखनजी ने श्री नाथद्वारा में संवत् १८५६ फाल्गुन वदी १३ शुक्रवार को जोड़ किया जिसका भावार्थ निज बुद्ध्यानुसार मैंने किया जिसमें कोई अशुद्धार्थ आया हो उसका मुझे वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं है।

अथ सातमां निरजरा पदार्थ।

॥ दोहा ॥

निरजरा पदार्थ सातमूं, ते तो उज्वल वस्तु अनूप। ते निज गुण जीव चेतन तणो, ते सुणज्यो धर चूंप।

॥ ढाल ॥

(धिन २ जम्बू स्वाम नें। एदेशी)

आठ कर्म छै जीवरै अनादिरा, त्यांरी उत्पत्ति आस्त्रव द्वार हो मुणिंद, ते उदय थयो ने पछै निरजरै। वलि उपजै निरंतर लार हो मुणिंद। निरजरा पदार्थ ओलखो॥ १ ॥ द्रव्य जीव छै तेहना। असंख्याता प्रदेश हो। मु। सारा प्रदेशां आस्त्रव द्वार छै, सारा प्रदेशां कर्म प्रवेश हो॥ मु॥ नि॥ २ ॥ इक इक प्रदेश छै तेहनें, समै समै कर्म लागंत हो। मु। प्रदेश एक एक कर्म ना, समै समै लागै छै अनन्त हो॥ मु॥ नि॥ ३ ॥ कर्म उदय थी

जीवरै, समै समै अनन्त झडजाय हो । मु । भरी नींगल ज्यूं कर्म मिटै नहीं, कर्म मिटवा रो न जाणै उपाय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४ ॥ आठ कर्मा में च्यार घनघातिया, त्यासुं चेतन गुणारी हुवै घात हो । मु । ते अंश मात्र क्षयोपशम रहै सदा, तिणसूं जीव ऊजलो रहै अंशमात हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५ ॥ कांइक घनघातिया क्षयोपशम हुवै । जब कांइक उदै रह्या लार हो । मु । क्षयोपशम थी ऊजलो हुवै, उदैथी ऊजलो न हुवै लिगार हो ॥मु॥नि॥६॥ कांयक कर्म क्षय हुवै, कांयक उपशम हुवै ताय हो । मु । ये क्षयोपशम हुयां जीव ऊजलो, ते चेतन गुण पर्याय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ७ ॥ जिम जिम कर्म क्षयोपशम हुवै, तिम तिम जीव ऊजलो हुवै आम हो । मु । जीव ऊजलो हुओ ते निरजरा, ते भाव जीव छै ताम हो ॥ मु ॥ नि ॥ ८ ॥ देश थकी जीव ऊजलो हुवै, तिण नें निरजरा कही भगवान हो । मु । सर्व ऊजलो ते मोक्ष छै, ते मोक्ष छै परम निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ९ ॥ ज्ञानावरणी क्षयोपशम हुवां नीपजै. च्यार ज्ञाननें तीन अज्ञान हो । मु । भणवो आचारंग आदि दे, चवदै पूर्वरो ज्ञान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १० ॥ ज्ञानावरणी रो पांच प्रकृति

समझे, दोय क्षयोपशम रहे सदीव हो । मु । तिणसूं दोय ज्ञान रहे सदा, अंशमात्र ऊजलो रहे जीव हो ॥ मु ॥ नि ॥ ११ ॥ मिथ्याती रैं तो जघन्य दोय अज्ञान छै, उत्कृष्टा तीन अज्ञान हो । मु । देश ऊणो दश पूर्व भणै, इतलो उत्कृष्टो क्षयोपशम अज्ञान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १२ ॥ समदृष्टि रै जघन्य दोय ज्ञान छे, उत्कृष्टा च्यार ज्ञान हो । मु । चवदह पूर्व उत्कृष्टो भणै, एहवो क्षयोपशम भाव निधान हो ॥ मु॥ नि ॥ १३ ॥ मति ज्ञानावरणी क्षयोपशम हुवां, निपजै मति ज्ञान ने मति अज्ञान हो । मु । श्रुत ज्ञानावरणो क्षयोपशम हुवां, निपजे श्रुत ज्ञान ने श्रुत अज्ञान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १४ ॥ भणै आचाराङ्ग आदि दे, समदृष्टि चवदह पूर्व नाण हो । मु । मिथ्याती उत्कृष्टो भणै, देश ऊणो दश पूर्व लग जाण हो ॥ मु ॥ नि ॥ १५ ॥ अवधि ज्ञानावरणी क्षयोपशम हुवां, समदृष्टि पामैं अवधि नाण हो । मु । मिथ्या दृष्टि ने विभङ्ग अज्ञान ऊपजै, क्षयोपशम प्रमाण जाण हो ॥ मु ॥ नि ॥ १६ ॥ मन पर्यायावरणी क्षयोपशम हुवां, उपजै मनपर्याय ज्ञान हो । मु । ते साधु समदृष्टि ने ऊपजै, एहवो क्षयोपशम भावप्रधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १७ ॥ ज्ञान अज्ञान सागार उपयोग

छै, यां दोन्यारो एक स्वभाव हो । मु । ते कर्म अलगा हुवां नीपजै, ते क्षयोपशम ऊजलो भाव हो ॥ मु ॥ नि ॥ १८ ॥ दरशणावरणी क्षयोपशम हुवां, आठ बोल नीपजै श्रीकार हो । मु । पांच इन्द्रियां ने तीन दरशन हुवै, ते निरजरा उज्वल तंतसार हो ॥ मु ॥ नि ॥ १६ ॥ दरशणावरणी री नव प्रकृति मभे, एक प्रकृति क्षयोपशम सदीव हो । मु । तिण सूं अचक्षु दरशन ने स्पर्शइन्द्री रहे सदा, ते क्षयोपशम भाव छै जीव हो ॥ मु ॥ नि ॥ २० ॥ चक्षु दरशनावरणी क्षयोपशम हुवां, चक्षु इन्द्री ने चक्षु दरशन होय हो । मु । कर्म अलगा हूवां ऊजलो हुवै जब देखवा लागै सोय हो ॥ मु ॥ नि ॥२१॥ अचक्षु दरशनावरणी विशेष थी, क्षयोपशम हुवै तिणवार हो । मु । चक्षु टाली ने शेष इन्द्रियां, क्षयोपशम इन्द्रियां पामैं च्यार हो ॥ मु नि ॥ २२ ॥ अवधि दरशनावरणी क्षयोपशम हुवां, उपजै अवधिदरशन विशेष हो । मु । जब उत्कृष्टो जीव देखै एतलो, सर्व-रूपी पुद्गल ले देख हो । मु । नि ॥ २३ ॥ पांच इन्द्री नें तीन दरशन ते, क्षयोपशम उपयोग मणागार हो । मु । ते बानगी केवल दरशण मांहिली, तिणमें शङ्का मत राखो लिगार हो । मु । नि ॥ २४ ॥ मोह-

नीय कर्म क्षयोपशम हुवां, नीपजै आठ बोल अमाम हो । मु । च्यार चारित्र नें देश व्रत निपजैं, तीन दृष्टि उज्वल हुवै ताम हो । मु । नि ॥ २५ ॥ चारित्र मोहनीयरी पच्चीस, प्रकृती मभ्के केई सदा रहै क्षयोपशम ताय हो । मु । तिण सूं अंशमात्र ऊजलो रहै, जब भला वर्तै अध्यवसाय हो । मु । नि ॥ २६ ॥ कदे क्षयोपशम अधिको हुवै, जब अधिका गुण हुवै तिण मांय हो । मु । क्षमां दया संतोषादिक गुण वधै, भली लेश्यादिक वर्तै जब आय हो । मु । नि ॥ २७ ॥ भला परिणाम पिण वर्तै तेहना, भला जोग पिण वर्तै ताय हो । मु । धर्म ध्यान पिण ध्यावै किण समें, ध्यावणो आवै मिटियां कषाय हो । मु । नि ॥ २८ ॥ ध्यान परिणाम जोग लेश्या भला, भला वर्तै छै अध्यवसाय हो । मु । सारा वर्तै अंतराय रो क्षयोपशम हुवां, मोह कर्म अलगो हुवां ताय हो । मु । नि ॥ २९ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब सातमां निरजरा पदार्थ कहते हैं निरजरा अर्थात् निरमला या ऊजला जीव सो निरजरा जीवका निजगुन है, अनादि काल से जीव अशुभ कर्म मयी मैल से मैला हो रहा है आठ कर्मों का सङ्गी जीव अनादि काल से हैं जिन्ह कर्मों की उत्पति आस्रव द्वार है, जीव के असंख्याता प्रदेश हैं सो सर्व प्रदेश आस्रव द्वार है जीव के एक

एक प्रदेश पर कर्म के अनन्तानन्त प्रदेश लगते हैं वे उदय होके समय समय अनन्ते ही अलग होते हैं उनके अलग होने से जीव ऊजला होय उसे भी निरजरा ही कहते हैं परन्तु फिर नवीन कर्म खोटी करणीं करणे से लगते रहते हैं, आठ कर्म में च्यार कर्म घण घातिक हैं जिस से जीव के निज गुणोंकी घात हो रही है लेकिन घातिक कर्मों का भी किंचित् क्षयोपशम सदा रहता है इसलिये जीव के निजगुण भी हमेशा ऊजले रहते हैं, जितने जितने घातिक कर्मों का क्षयोपशम होता है उतना उतना ही जीव देशतः उज्वल होता जाता है, जीव उज्वल होय उसी का नाम निरजरा है सर्वतः उज्वल होय उसका नाम मोक्ष है, अब ज्ञानावरणीयादि च्यार धातिक कर्मों का क्षयोपशम होने से जीव के गुण प्रगट होते हैं जिसका वर्णन विस्तार पूर्वक कहते हैं।

१—ज्ञानावरणीय कर्म क्षयोपशम होने से केवल विना च्यार ज्ञान तीन अज्ञान तथा भणना गुणना यह आठ बोल प्राप्त होते हैं, ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृती में से मति और श्रुत ज्ञानावरणी तो किंचित् शाश्वती जीव के क्षयोपशम रहती है जिस से समदृष्टि के तो मति श्रुति ज्ञान और मिथ्यात्वी के मति श्रुति अज्ञान जघन्य में है तथा बाकी प्रकृतियोंका क्षयोपशम जितना जितना अधिक होय उतना उतना ही ज्ञान गुण अधिक प्रगट होता जाता है, मिथ्याती के तो जघन्य दोय और उत्कृष्टा तीन अज्ञान होता है, और समदृष्टि के ज्ञानावरणीय कर्म क्षयोपशम होने से जघन्य दोय ज्ञान और उत्कृष्टा च्यार ज्ञान होता है, तथा मिथ्याती तो जघन्य आठ प्रवचन माता का भणता है और उत्कृष्टा देश ऊंणा दश पूर्व भण जाता है, समदृष्टि जघन्य आठ प्रवचन माता का और उत्कृष्टा चौदह पूर्व भण जाता है, अवधि ज्ञानावरणी क्षयोपशम होने से समदृष्टि के तो

अवधि ज्ञान और मिथ्या दृष्टि के विभङ्ग अज्ञान होता है मन पर्यव ज्ञानावरणी का क्षयोपशम मिथ्यात्वी के कदापि नहीं होता है इस प्रकृती का क्षयोपशम तो समदृष्टि साधू के ही होता है जिस से मन पर्यव ज्ञान प्रगट होता है, केवल ज्ञानावरणी का क्षयोपशम होता नहीं इसका तो क्षायक ही होता है, तात्पर्य ज्ञान अज्ञान दोनूं हीं क्षयोपशम भाव है सो जीव के निजगुण हैं दोनूं हीं का गुण यथार्थ जानने का है विपरीत जानें सो मिथ्यात है, तब कोई कहे तो फिर इस गुणको अज्ञान क्यों कहा इसका उत्तर यह है कि जैसे कूवेका पानी तो शुद्ध निरमल ठण्डा और मीठा है परन्तु वोही पानी ब्राह्मन के बरतन में रहने से शुद्ध गिना जाता है और वोही पानी मातङ्ग के बरतन में रहे तब अशुद्ध गिनते हैं वैसे ही मिथ्याती के ज्ञान गुन प्रगट हुआ सो मिथ्यात सहित है इसलिये उसे अज्ञान और समदृष्टि के ज्ञान कहा जाता है ज्ञान अज्ञान दोनूं ही साकार उपयोग हैं।

२—दुसरा घातिक कर्म दरशनावरणीय है जिसकी ९ प्रकृति है जिसमें से अचक्षु दरशनावरणीय देशतें हमेशा क्षयोपशम रहती है जिस से अचक्षु दरशन और स्पर्श इन्द्री तो जीव के हमेशा ही है बाकी जैसी जैसी प्रकृति का क्षयोपशम होय वैसा वैसा ही गुण जीव के प्रगट होता जाता है, चक्षु दरशनावरणी का क्षयोपशम होने से चक्षु इन्द्री और चक्षु दरशन गुण होता है, अचक्षु दरशनावरणी का विशेष क्षयोपशम होने से अचक्षु दरशन और श्रुत घ्राण रश स्पर्श ये च्यार इन्द्रियां होती है, अवधि दरशनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से अवधि दरशन उत्पन्न होता है, तात्पर्य पांच इन्द्रियां और तीन दरशन यह आठ गुन दरशनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से होते हैं सो केवल दरशन की बानगी है, पांच इन्द्रियां और तीन दरशन ये जीवके अणागार उपयोग गुण हैं।

३—तीसरा घातिक कर्म मोहनीय है जिसका क्षयोपशम होने से जीव के आठ गुण प्रगट होते हैं, मोहनीय कर्म के दोय भेद हैं चारित्र मोहनीय और समकित मोहनीय चारित्र मोहनीय की पच्चीस और समकित मोहनीय की तीन प्रकृती हैं जिस में से चारित्र मोहनीय की प्रकृतियां किंचित् हमेशा क्षयोपशम रहती है जिससे शुभ जोग और भले अध्यवसाय जीव के वर्तते हैं तथा धर्म ध्यान भी ध्याता है परन्तु कषाय मिटणे से धर्म ध्यान ध्याया जाता है, ध्यान परिणाम जोग लेश्या अध्यवसाय ये सर्व भले वर्ते सो अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होने से तथा मोह कर्म का उदय अलग होने से वर्तते हैं, अब मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से जीव आठ बोल पाता है सो कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

चौकड़ी अनन्तानु बंधी आदि दे, घणी प्रकृतियां चयोपशम हुवां ताय हो। मु। जब जीवरै देश ब्रत नीपजै, इणहिज विध चारों चारित आय हो। मु। नि॥ ३०। मोहनीय चयोपशम हवां नीपजै। देश ब्रतनें चारित च्यार हो। मु। वलि चमा दयादिक गुण नीपजै, ये सघला ही गुण श्रीकार हो। मु। नि॥ ३१॥ देश ब्रत नें च्यारूं चारित्र भला, ते गुण रतनां री खान हो। मु। ते चायक चारित्र री बानगो, एहवो चयोपशम भाव प्रधान हो। मु। नि॥ ३२॥ चारित्र नें ब्रत संवर कह्यो, तिण सूं पाप रूंधै छै ताय हो। मु। ते पाप झडनें ऊजलो हुवै,

तिणनें निरजरा कही इणन्याय हो । मु । नि ॥ ३३॥
दर्शन मोहणी क्षयोपशम हुवां, निपजै सांची शुद्ध
श्रद्धान हो । मु । तीन दृष्टि में शुद्ध श्रद्धान छै, एह-
वो क्षयोपशम भाव निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३४ ॥
मिथ्यात मोहणी क्षयोपशम हुवां । मिथ्यादृष्ट उज्वल
होय हो । मु । जव केइक पदार्थ शुद्ध श्रद्धले, एहवो
गुण नीपजै छै सोय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३५ ॥ मिश्र
मोहणी क्षयोपशम हुवां, सम मिथ्या दृष्ट उज्वल
हुवै ताम हो । मु । जव घणां पदार्थ शुद्ध श्रद्धले,
एहवो गुण नीपजै छै आम हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३६ ॥
समकित मोहणी क्षयोपशम हुवां, नीपजै समकित
रतन प्रधान हो । मु । नव ही पदार्थ शुद्ध श्रद्धले,
एहवो क्षयोपशम भाव निधान हो ॥ मु ॥नि ॥ ३७॥
मिथ्यात मोहनीय उदय रहै जिहां लगै, समां
मिथ्या दिष्ट नहीं आवंत हो । मु । मिश्र मोहनी
रा उदा थकी, समकित नहीं पावंत हो ॥ मु ॥ नि ॥
॥ ३८ ॥ समकित मोहनीय जिहांलग उदय रहै,
त्यां लग क्षायक समकित आवै नांहिं हो । मु । एह
वी छाक छै मोहनीय कर्मनी, न्हाखै जीवने भ्रम
जाल मांहि हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३९ ॥ तीनूं ही दृष्ट
क्षयोपशम भाव छै, ते सगला ही शुद्ध श्रद्धान हो

। मु । ते क्षायक सम्यक्त मांहिली, बानगी मात्र गुण निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४० ॥ अन्तराय कर्म क्षयोपशम हुवां, आठ गुण नीपजै श्रीकार हो । मु । पांच लब्धिने तीन वीर्य नीपजै, हिवे तेहनुं सुणो विस्तार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४१ ॥ दाना अंतराय क्षयोपशम हुवां, दान देवारी लब्धि उपजंत हो । मु । लाभा अन्तराय क्षयोपशम हुवां. लाभरी लब्धि खुलंत हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४२ ॥ भोगा अंत-राय क्षयोपशम हुवां, भोगरी लब्धि उपजै ताय हो । मु । उपभोगा अंतराय क्षयोपशम हुवां, उपभोग लब्धि उपजै आय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४३ ॥ वीर्य अंतराय क्षयोपश हुवां, वीर्य लब्धि उपजै छै ताय हो । मु । बीर्य लब्धि ते शक्ति छै जीव री, उत्कृष्टी अनन्ती होय जाय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४४ ॥ यह पांचूं ही प्रकृति अंतरायनी, सदा क्षयोपशम रहै छै साक्षात हो । मु । तिण सूं पाचूं लब्धि ने बाल वीर्य, ते उज्वल रहै छै अल्प मात हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४५ ॥ दान देवारी लब्धि निरन्तर रहै, दान देवै ते जोग व्यापार हो । मु । लाभनी लब्धि निरन्तर रहै, बस्तु लाभै ते किण वार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४६ ॥ भोग लब्धि तो रहै छै निरन्तरे, भोग भोगवै ते जोग

व्यापार हो । मु । उपभोग पिण लब्धि छै निरंतरे, उपभोग भोगवै जिणवार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४७ ॥ वीर्य लब्धि तो निरन्तर रहै, चवदमा गुणठाणा लग जाण हो । मु । बारमां तांई तो क्षयोपशम भाव छै, खायक तेरमें चोदमें गुणठाण हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ ४८ ॥ अन्तराय रो क्षयोपशम हुवां जीव रै, पुन्य सारू मिलसी भोग उपभोग हो । मु । साधु पुद्गल भोगवै ते शुभ जोग छै, और भोगवै ते अशुभ जोग हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४९ ॥

॥ भावार्थ ॥

अनन्तानु बंधिया क्रोध आदि घणी प्रकृतियां मोहनीय कर्म की क्षयोपशम होय तव जीव के देश व्रत गुण निपजता है, इसी तरह घणी प्रकृतियों का क्षयोपशम होने से सामायक आदि च्यारो चारित्रों को जीव पाता है, क्षमा दया निरलोभता आदि अनेक गुण भी मोहनीय कर्म क्षयोपशम होने से होते हैं, देशव्रत तथा च्यार चारित्र हैं सो क्षयोपशम भाव है क्षायक चारित्र की वानगी है तथा चारित्र है सो व्रत संबर है परन्तु चारित्र की क्रिया है सो शुभ जोगों से होती है जिससे कर्म कटते हैं जीव उजला होता है तथा क्षयोपशम भाव से भी जीव उज्वल होता है इसलिये इनका वर्णन निरजरा पदार्थ में भी वताया है, दरशन मोहनीय क्षयोपशम होने से शुद्ध श्रद्धामयी गुण निपजता है, तीन दृष्ट क्षयोपशम भाव है, शुद्ध श्रद्धा ही को दृष्ट कहते हैं किन्तु अशुद्ध श्रद्धा को दृष्ट नहीं कहते, अशुद्ध श्रद्धा है सो तो मिथ्यात्व है परन्तु दृष्ट नहीं है, मिथ्यात मोहनीय क्षयोपशम होने से मित्थ्या दृष्ट उज्वल होती है जिससे कितने ही पदार्थों को शुद्ध श्रद्धता है, सममित्थ्या मोहनीय

क्षयोपशम होने से समभिथ्या दृष्ट उज्वल होती है तब बहोत पदार्थोंको जीव शुद्ध श्रद्धता है, और समकित मोहनीय क्षयोपशम होने से समदृष्ट उज्वल होती है जब जीव नव ही पदार्थों को यथार्थ श्रद्धता है शुद्ध श्रद्धान है सोही सम्यक्त्व है, मिथ्यात्व मोहनीय का उदय जहां लगि है तहां लगि समभिथ्यादृष्ट नहीं पाता, और समभिथ्या मोहनीय का उदय है जहांतक समदृष्ट नहीं पाता है, समकित मोहनीय का उदय जहांतक जीव के रहता है तहां तक जीव क्षायक सम्यक्त्व नहीं पाता है. तात्पर्य तीनूं ही दृष्ट है सो क्षयोपशम भाव है, क्षायक सम्यक्त्व की वानगी है, मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से जीव उज्वल होता है सो क्षयोपशम भाव है अर्थात् जीव निरमला हुवा सोही निरजरा है जिससे जीवके आठ वोलों की प्राप्ति होती है—सामायक आदि च्यार चारित्र, देशव्रत, और तीन दृष्ट, चौथा घातिक कर्म अन्तराय है जिसका क्षयोपशम होने से जीव के आठ वोलों की प्राप्ति होती है—पांच लब्धि और तीन वीर्य जिसका वर्णन कहते हैं।

१—दाना अन्तराय का क्षयोपशम होने से दान देने की लब्धि उपजती है।

२—लाभा अन्तराय का क्षयोपशम होने से लाभने की अर्थात् वस्तु पाने की लब्धि उपजती है।

३—भोगा अन्तराय का क्षयोपशम होनेसे भोग भोगने की लब्धि उपजती है।

४—उपभोगा अन्तराय का क्षयोपशम होनेसे उपभोग भोगने की लब्धि उपजती है।

५-वीर्य अन्तराय का क्षयोपशम होनेसे वीर्य लब्धि उपजती है अर्थात् पुद्गलों का चय उपचय करने की शक्ति जीव में होती है तथा वाल वीर्य, वाल पण्डित वीर्य, और पण्डित वीर्य, जीव पाता है यह उपरोक्त पांचूं ही प्रकृति अन्तराय कर्म की है सो

जीव के देशतः सदा क्षयोपशम रहती है जिससे सदा जीव में पांचो लब्धि पाती है अर्थात दान देने की लब्धि तो जीवके निरन्तर है और दान देता है सो जोगों का व्यापार है, लाभ लब्धि भी जीवके निरन्तर है परन्तु वस्तुओं का लाभ तो किसी समय ही होता है. ऐसे ही भोग उपभोग लब्धि भी जीवके निरन्तर रहती है परन्तु भोग उपभोग तो भोगवैं उसी वक्त जोगों का व्यापार है, वीर्य लब्धि भी जीव के निरन्तर चौदमां गुणस्थान तक है जिसमें बारवां गुणस्थान तक तो क्षयोपशम भाव है और तेरवें चौदवें गुणस्थान क्षायक भाव की लब्धि है, तात्पर्य पांच लब्धि है सो बारमां गुणस्थान तक क्षयोपशम भाव है सो जीव का निरमला गुण है उसी का नाम निरजरा है, और जो अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होनेसे तथा पुण्योदय से भोग उपभोग जीव को मिलता है जिसे साधू भोगवे सो तो शुभ जोग व्यापार है क्योंकि साधू तो वस्तु प्राशुक निर-दोष जिन आज्ञा प्रमाण भोगते हैं इसलिये, और गृहस्थ जो पुद्गल भोगता है सो सावद्य जोग व्यापार है याने अशुभ जोग है, अब तीन प्रकार के वीर्य हैं जिसका वर्णन कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

हिवे वीर्य तणा तीन भेद छै, तिणरी करिजो पिछाण हो। मु। बाल वीर्य कहो छै बालनी, चौथा गुण ठाणा तांई जाण हो॥ मु॥ नि॥ ५०॥
पण्डित वीय कहो छै पण्डित तणौ, छट्ठाथी लेई चौद में गुण ठाण हो। मु। बाल पण्डित कहो छै श्रावक तणौ, येह तीनूं ही उज्वल गुण जाण हो॥ मु॥ नि॥

॥ ५१ ॥ कदे जीव वीर्य ने फोडवै, ते तो छै जोग व्यापार हो । मु । ते सावद्य निरवद्य तो जोग छै, वीर्य सावद्य नहीं छै लिगार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५२ ॥ लब्धि वीर्य ने तो वीर्य कह्यो, करण वीर्य ने कह्यो छै जोग हो । मु । ते पिण शक्ति वीर्य छै त्यां लगै, त्यां लग रहै पुद्गल संजोग हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५३ ॥ पुद्गल विन वीर्य शक्ति हुवै नहीं, पुद्गल बिन नहीं जोग व्यापार हो । मु । पुद्गल लागै छै त्यां लगे जीवरै, जोग वीर्य छै संसार मझार हो ॥ मु ॥ ॥ नि ॥ ५४ ॥ वीर्य शक्ति तो निजगुण जीवरो, अन्तराय अलगी हुयां जाण हो । मु । ते वीर्य निश्चय ही भाव जीव छै । तिण में शंका मत आण । हो ॥ मु ॥ ५५ ॥ एक मोह कर्म उपशम हूवां नीपजै उपशम भाव दोय हो । मु । उपशम समकित ने उपशम चारित्र हुवै, ते तो जीव ऊजलो हुवै सोय हो ॥ मु ॥ ॥ नि ॥ ५६ दरशन मोहनी उपशम हुवां, नीपजै उपशम समकित निधान हो । मु । चारित्र मोहनी उपशम हुवा । प्रगटे उपशम चारित्र प्रधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५७ ॥ च्यार घनघाती कर्म च्चय हुयां, जब प्रगटै च्चायक भाव हो । मु । ते गुण सर्वथा ऊजला, त्यांरो जुदो जुदो

छै स्वभाव हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५८ ॥ ज्ञानावरणी सर्वथा क्षय हुवां, ऊपजै केवल ज्ञान हो । मु । दरशना वरणी पिण सर्व क्षय हुवां, उपजै केवल दरशन प्रधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५९ ॥ मोहनीय कर्म क्षय हुवां सर्वथा, वाकी रहे नहीं अंशमात हो । मु । जव क्षायक समकित प्रगटै, वली क्षायक चारित्र यथाख्यात हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६० ॥ दरशन मोहनीय क्षय हुवां सर्वथा, नोपजै क्षायक समकित प्रधान हो । मु । चारित्र मोहनीय क्षय हुवां नीपजै, क्षायक चारित्र निधान हो ॥ मु ॥ नि ६१ ॥ अंतराय कर्म अलगो हुवां, क्षायक वीर्य शक्ति होवै ताय हो । मु । क्षायक लब्धि पांचूं ही प्रगटै, किण वातरी नहीं अन्तराय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६२ ॥ उपशम क्षायक क्षयोपशम भाव निरमला, ते निजगुण जीवरा निरदोष हो । मु । ते तो देशथकी जीव ऊजलो, सर्व ऊजलो ते जीव मोख हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६३ ॥ देश व्रत छै श्रावक तणौ, सर्व व्रत साधू रै छै ताहि हो । मु । देश व्रत समायो सर्व व्रतमें, ज्यूं निरजरा समायी मोक्ष मांहि हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६४ ॥ देश थकी उजलो ते निरजरा, सर्व ऊजलो ते जीव मोख हो । मु । तिण सूं निरजराने मोक्ष दोनूं जीव छै,

उज्वल गुण जीवरा निरदोष हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६५ ॥
जोड़ कीधो छै निरजरा ओलखायवा, श्रीजीद्वारा
शहर मझार हो । मु । सम्बत् अट्ठारे वर्ष छपनें,
फागण सुद दशमी गुरुवार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६६ ॥

भावार्थ ।

वीर्य के तीन भेद हैं वाल वीर्य १ पण्डित वीर्य २ वाल पण्डित वीर्य ३ वाल वीर्य तो पहिला गुण ठाणां तक है, पण्डित वीर्य छठा गुण ठाणां से चौदमां गुणठाणां तक और बालपण्डित वीर्य सिर्फ पांच में गुणठाणे ही है, यह तीनूं ही वीर्य जीव का उज्वल गुण है अन्तराय कर्म अलग होनेसे प्रगट होती है, क्षयोपशम भाव की वीर्य तो वारमां गुणस्थान तक है और क्षायक भाव की वीर्य तेरमे चौदमें गुणस्थान हैं, अव्रती को वाल, सर्व व्रतीको पण्डित, और व्रताव्रती को वालपण्डित कहते हैं, जब जीव वीर्य को फोड़ता है तब जोगों द्वारा कर्त्तव्य करता है सो सावद्य निरवद्य दोनूं हैं परन्तु वीर्य गुण सावद्य नहीं है वीर्य तो क्षयोपशम तथा क्षायक भाव है, लब्धि वीर्य को तो वीर्य अर्थात् शक्ति और करण वीर्य को जोग कहा है, जहांतक पुद्गलों का संयोग है तहांतक करण वीर्य है इसलिये कर्ण वीर्य को जोग कहा है जबतक जीव पुद्गलों को ग्रहण करता है तबतक जोगो की वर्तना हैं पुद्गलों के विना जोगों का व्यापार नहीं है, और पुद्गलों को ग्रहण करणे की शक्ति जीव में उत्पन्न हुई है उस का नाम वीर्य है जीव के भाव हैं सो निश्चय ही जीव है, मोह कर्म को उपशमाने अर्थात् दवाने से जीवके भाव उत्पन्न हुए उसका नाम उपशम भाव है जिससे दोय गुण प्रगट होते हैं दरशन मोहनीय को उपशमाने से उपशम समकित, और चारित्र मोहनीय को उपशमाने से उपशम चारित्र यह दोनूं हीं जीव के निरमल गुण हैं, च्यार घातिक कर्म

क्षय होने से जीव के जो भाव निष्पन्न होते हैं उसे क्षायक भाव कहते हैं—ज्ञानावरणीय क्षय होने से केवल ज्ञान, दरशनावरणी क्षय होने से केवल दरशन; मोहनीय कर्म दो प्रकार है दरशन मोहनीय क्षय होने से क्षायक समकित और चारित्र मोहनीय क्षय होनेसे क्षायक चारित्र प्रगट होता है, चौथा घातिक कर्म अन्तराय है सो क्षय होने से क्षायक वीर्य गुण प्रगट होता है जिस से दानालब्धि आदि पांचूं ही लब्धि क्षायक भाव की हो जाती है तब किसी बात की अन्तराय नही रहती है तात्पर्य उपशम भाव क्षयोपशम भाव और क्षायक भाव ये तीनूं हीं जीवके निरमल गुण है सो भाव जीव है तथा जितना जितना जीव निरमला है वोही निरजरा है वोही जीव का निरदोष गुण है, अर्थात् देशतः जीव उजला है सो तो निरजरा है और सर्वतः जीव उजला है वोह मोक्ष हैं, जैसे देश व्रत सर्व व्रत में समा जाता है वैसे ही निरजरा मोक्ष में समा जाती है, निरजरा भी जीवका निरदोष गुण है और मोक्ष भी जीवका निरदोष गुण है दोनूं ही भाव जीव है, निरजरा को ओलखाने के लिये स्वामी श्री भीखनजी ने श्रीजीद्वाराशहर में सम्वत् १८५६ मिती फाल्गुन सुद १० गुरुवार को ढाल जोड़ कर कही उसका भावार्थ मैंने मेरी बुद्धयानुसार कहा जिसमें कोई अशुद्धार्थ हो उसका मुझे वारम्बार मिच्छामि दुक्कड़ है।

॥ दोहा ॥

निरजरा तणो निर्णय कह्यो। ते उज्वल गुण विशेष॥ ते निरजरा हुवै छै किण विधै। ते सुण ज्यो आणि विवेक॥ १॥ भूख तृषा शीत तापादिके, कष्ट भोगवै विविध प्रकार॥ उदय आवै ते

भोगव्यां। जब कर्म हुवे छै न्यार ॥ २ ॥ नरका-दिक दुःख भोगव्यां। कर्म घस्यां थी हलवो थाय ॥ आ तो सहजे निरजरा हुई जीवरै। तिण न कियो मूल उपाय ॥ ३ ॥ निरजरा तणुं कामी नहीं। कष्ट करै छै विविध प्रकार॥ तिणरा कर्म अल्पमात्र झडै। अकाम निरजरारो यह विचार॥ ४ ॥ इह लोक अर्थे तप करै। चक्रवर्तादिक पदवी काम। केई परलोक अर्थे तप करै। नहीं निरजरा तणा परिणाम ॥ ५ ॥ केई यश महिमा वधारवा तप करै छै ताम॥ इत्यादिक अनेक कारण करै। ते निरजरा कहि छै अकाम ॥ ६ ॥ शुद्ध करणी निर-जरा तणी। तिण सूं कर्म कटै छै ताम॥ थोड़ो घणो जीव ऊजलो हुवै। ते सुणो राखि चित ठाम ॥ ७ ॥

॥ भावार्थ ॥

निरजरा का निर्णय तो ऊपर कहा, अब उसकी करणी का वर्णन करते हैं। निरजरा अकाम और सकाम दो प्रकार से होती है प्रथम अकाम अर्थात् निरजरा का कामी नहीं परन्तु शीत ताप आदि अनेक प्रकारसे काया कष्ट करै जिससे कर्म झड़ के जीव उज्वल होय तथा उदय होय उसे भोगवें नरकादिक के दुःख उदय होय सो भोगते भोगते जीव हलका होय यह तो सहजे ही निरजरा हुई। परन्तु निरजरा होने का उपाय नहीं जानता, किन्तु दुःखों को सहन किया जिससे कर्म झड़े, तथा उदेरि कर कष्ट लिया और उसे सम भाव से सहन किया

तो निरजरा हुई अथवा यह लोक के सुखों के निमित्त परलोक देवादिक के सुखोंके निमित्त और यश महिमा वधाने के निमित्त तप करै सो अकाम निरजरा है, और जो निरजरा को जानकर निरजरा का कामी होके अनेक प्रकार से तप करै उसका नाम सकाम निरजरा है, निरजरा की करणी शुद्ध और निरदोप है करणी करणेसे अशुभ कर्म झड़कर जीव उजला होता है जिसका वर्णन करते हैं।

॥ ढाल ॥

(दूजो मंगल सिद्ध नमुं नित पूदेशी)

देश थकी जीव ऊजलो हुवै छै, ते तो निरजरा अनूपजी। हिव निरजरा तणी शुद्ध करणी कहूं छूं, ते सुणज्यो धरि चूंपजी। या शुद्ध करणी कर्म काटणारी ॥ १ ॥ ज्यूं साबू दे कपड़ा ने तपावै, पाणी सूं छांटै करै संभालजी। पछै पाणी सूं धोवै कपड़ा ने, जब मैल छूटै तत्कालजी ॥ या ॥ २ ॥ ज्यूं तप करि ने आतम ने तपावै, ज्ञान जल सूं छांटै तायजी। ध्यान रूप जलमांहि झकोलै, जब कर्म मैल झड़जायजी ॥ या ॥ ३ ॥ ज्ञान रूप साबण शुद्ध चोखो, तप रूपी यो निरमल नीरजी। धोबो जिम छै अंतर आतम, ते धोवै निजगुण चीरजी॥ या ॥ ४ ॥ कामी छै एकान्त कर्म काटणारो, और वंछा नहीं कायजी। ते तो करणी एकान्त निरजरारी, तिण सूं कर्म मैल झड़जायजी ॥ या ॥ ५ ॥ कर्म काटणारी करणी

चोखी, तिणरा छै बारे भेदजी। तिण करणी कियां थी निरजरा हुवै छै, ते सुणज्यो आणि उमेदजो ॥ या ॥ ६ ॥ अणशण करि च्यारूं आहारज त्यागै, करै जावज्जीव पचखाणजी। अथवा थोड़ा काल तांई त्यागै, एहवी तपस्या करै जाण जाणजी ॥ या ॥७॥ शुभ जोग रूंध्यां साधूरै हुवै संबर, श्रावकरै ब्रत हुवै ताहि जी। पिण कष्ट सयां सूं निरजरा हुवै छै, तिण सूं घाली छै निरजरा मांहि जी ॥ या ॥ ८ ॥ ज्यूं ज्यूं भूख तृषा अति लागै, तिम तिम उपजै कष्ट अत्यंत जी। ज्यूं ज्यूं कर्म कटै हुवै न्यारा, समे समे खिरै छै अनन्तजी ॥ या ॥ ६ ॥ ऊणू रहै ते उणोदरी तप छै, ते तो द्रव्य ने भाव छै न्यार जी। द्रव्यै तो उपगरण ऊणा राखै, वलि पूरो न करै आहारजी ॥ या ॥ ॥ १० ॥ भावै ऊणो क्रोधादिक निवरतै, कलहादिक देवै निवारजी। समता भाव छै आहार उपधि थी, एहवो ऊणोदरी तप सारजो ॥ या ॥ ११ ॥ भिक्षाचरी तप भिक्षा त्याग्यां हुवै, ते अभिग्रह छै विविध प्रकारजो। द्रव्य क्षेत्र काल भाव अभिग्रह छै, त्यांरो छै बहु विस्तारजो ॥ या ॥ १२ ॥ रस रो त्याग करै मन सूधै, छोड्यो विषयादिक री स्वादजी। अरस विरस आहार भोगवै समता सुं, तिणरै तप तणी

हुवै समाधजी ॥ या ॥ १३ ॥ काया क्लेश तप कष्ट कियां हुवै, अणशण करै विविध प्रकारजी। शीत तापादिक सहै खाज न खिणै, वलि न करै शोभ ने सिणगारजी ॥ या ॥ १४ ॥ प्रति सलेहणिया तप च्यार प्रकारे, ज्यांरो जुवो २ छै नामजी। कषाय इन्द्री ने जोग सलेहणा, विवत सेणाशण सेवणा तामजी ॥ या ॥ १५ ॥ श्रुत इन्द्री ने विषय ना शब्द सुं रूंधै, विषै शब्द न सुणे तिवारजी। कदा विषैरा शब्द काना में पडियां, राग द्वेष न करै लिगारजी ॥ १६ ॥ चक्षु इन्द्री रूप सुं सलीनता, घ्राण इन्द्री गंध सुं जाणजी। रस इन्द्री रससुं ने स्पर्श इन्द्री स्पर्श सुं, श्रुत इन्द्री ज्यूं लीज्यो पिछाणजी ॥ या ॥ १७ ॥ क्रोध उपजियां रूंधण करणो, उदय आयो निरफल करणु तामजी। मान माया लोभ इमहिज जाणो, कषाय सलेहणा तप हुवै आमजी ॥ या ॥ १८ ॥ माडुवा मन ने रूंध देणो, भलो मन प्रवर्तावणो ताम जी। इमहिज वचन काया ने जाणो, जोग सलेहणिया तप हुवै आमजी ॥ या ॥ १६ ॥ स्त्री पशु पंडक रहित थानक सेवै, ते पिण शुद्ध निरदूषण जाणजी। पीढ पाटादिक निरदोष सेवै, विवित सैणाशण तप एम पिछाणजी ॥ या ॥ २० ॥

॥ भावार्थ ॥

निरजरा अर्थात् निरमला जीव देशतः होय सो निरजरा है सो किस करणी करणेसे होता है सो कहते हैं—भूख, तृषा, शीत, ताप आदि अनेक प्रकार से कष्ट उदय होय उसे सम परिणामोंसे सहन करै, तव अशुभ कर्मों का क्षय होय अर्थात् जीवसे कर्म अलग होते हैं, वे दो प्रकार से होते हैं अकाम निरजरा और सकाम निरजरा, नरकादिक के दुःख भोगने से सहजे ही जीव हलका होय तथा निरजरा का कामी नहीं और यह लोक परलोक काम भोगादि निमित्त अथवा यश महिमा वधाने को तपस्या करे उसे अकाम निरजरा कही है जिससे कर्म अल्प मात्र झड़ते हैं दूसरी सकाम निरजरा कर्म काटणेके लिये करै अर्थात् निरजरा का कामी होके तप करै जिसको सकाम निरजरा कही है, निरजरा की करणी शुद्ध निरदोष है जिससे जीव कर्ममयी मैल को अलग कर के उज्वल होता है जैसे धोवी कपड़े को साबुन देके तावड़े में तपाता है और पानी में साफ करता है, वैसे ही तप करके आतम प्रदेशों को तपावै ज्ञान रूप साबुन देके ध्यानरूप जलसे धोवी समान अन्तर आतमा है सो पापमयी मैलसे जीवके प्रदेश मैले हो रहे हैं उन्हें धोवै उसे निरजरा की करणी कहते हैं उसके बारह भेद हैं सो कहते हैं।

१—अणशण अर्थात् आहार पानी भोगने के त्याग करै थोड़े काल पर्य्यन्त अथवा जावज्जीव पर्य्यन्त जिसको अणशण कहते हैं, साधू शुभ योगों को रूंधै तब उनके तो जितने शुभयोग रुके उतना ही संवर होता है और श्रावक का खाना पीना आदि कर्तव्य सावद्य है अशुभयोग हैं जिसे त्यागने से व्रत संवर होता है परन्तु कष्ट को सम परिणामोंसे साधु तथा श्रावक सहन करते हैं जिससे कर्म क्षय होके जीव निरमल होता है इसलिये निरजरा की करणी कही है।

२—ऊणोदरी तप दो प्रकार से होता है, द्रव्य और भाव; ऊणा

याने कम करने से होता है, द्रव्यें तो उपग्रण आदि वस्तु कम रक्खे तथा आहार पानी कम करै, और भावें क्रोध मान माया लोभ को घटावै।

३—भिक्षाचारी तप भिक्षा छाड़ने से, अर्थात् द्रव्य क्षेत्र काल भावसे अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण करै और निरदोष भिक्षा आचारते कष्ट होय उन्हें सहन करे।

४—रस परित्याग अर्थात् घृत मिष्टान्न आदि रसों का त्याग करै और अरस विरस आहार को सम परिणामों से भोगवै याने राग द्वेष न करे।

५—काया क्लेश अर्थात् शरीर की शोभा विभूषा न करै शीत ताप आदि अनेक प्रकारों के कष्टों द्वारा काया को क्लेश होने से सम परिणामों से सहन करें।

६—प्रति सलेहणा तप च्यार प्रकार से होता है कषाय प्रति सलेहणा १, इन्द्रीय प्रति सलेहणा २, जोग प्रति सलेहणा ३, विवत सैणासण सेवणा ४।

१—कषाय प्रति सलेहणा अर्थात् क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, ये च्यारो प्रकार की कषायों को न करना तथा उदय आई को निःफल करना।

२—जोग प्रति सलेहणा अर्थात् मन १, वचन २, काया ३ ये तीनों प्रकार के अशुभ जोगोंको रूंधना और शुभ जोगों को प्रवर्त्ताना।

३—इन्द्रीय प्रति सलेहणा अर्थात् श्रोत १, चक्षु २, घ्राण ३, रस ४, स्पर्श ५ इन पांचों इन्द्रियों की शब्दादिक विषयों में राग द्वेष रहित रहना तथा इनके काम भोगों से विरक्त होना।

४—विवत सैणाशणा सेवणा अर्थात् स्त्री पशु नपुंशक रहित। निरदोष मकान में रहना तथा पाटा चौकी आदि निरदोष सेना।

यह उपरोक्त षट प्रकार का वाह्य तप कह्या अब षट प्रकार का अभ्यन्तर तप कहते है।

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

छै प्रकारे बार्ह्म तप कह्यो छै, ते प्रसिद्ध चावो दीसंतजी। हिवै छै प्रकारे अभ्यन्तर तप कहूं छूं, ते भाख्यो छै श्री भगवन्तजो ॥ या ॥ २१ ॥ प्रायश्चित्त कह्यो छै दश प्रकारे, ते दोष आलोवै प्रायश्चित्त लेवन्तजो। ते कर्म खपावै आराधक थावै, ते तो मुक्ति में वेगो जावन्तजी ॥ या ॥ २२ ॥ विनय तप कह्यो छै सात प्रकारे, त्यांरो छै बहु विस्तारजो। ज्ञान दरशन चारित मन विनय, वचन काया ने लोग ववहारजो ॥ या ॥ २३ ॥ पांचूं ज्ञान तणा गुण ग्राम करणा, ज्ञान विनय करणो एहजी। दरशन विनयरा दोय भेद छै, सुश्रुषा ने अणआसातना तेहजी ॥ या ॥ २४ ॥ सुश्रुषा तो बड़ा साधुरी करणी, त्यांने बंदना करणी शीशनामजी। ते सुश्रुषा दश प्रकार कहि छै, त्यांरा जुदा २ नाम तामजी ॥ या ॥ २५ ॥ गुरु आयां ऊठ ऊभो होणो, आशण छोड़ि देणो तामजी। आशण आमंत्रणो ने हर्ष सुं देणों, सत्कार सनमान देणो आम जी ॥ या ॥ २६॥ बंदना करी हात जोडि रहै ऊभो, आवतो देख सामो जाय जी। गुरु ऊभा रहै जिहांलग ऊभो रहणो, जावै

जव पोंहचावै तायजी ॥ या ॥२७ ॥ अरण आशातना विनयरा भेदजे, पैंतालीश कह्या जिनरायजी । अरिहन्त धर्म प्ररूप्यो, वलि आचार्य्य ने उपाध्यायजी ॥ या ॥ २८॥ थविर कुलगरण संघ नो विनय, क्रियावादी सम्भोगो जाणजो । मति ज्ञानादिक पांचूं ही ज्ञान रो, एह पन्नरे वोल पिछाणजो ॥ या ॥ २६ ॥ पन्नरे वोलां में पांच ज्ञान फेर कह्या छै, ते दीशै छै चारित्त सहितजो । ए पांचूं ही ज्ञान फेर कह्या त्यांरी, विनय तणी और रोतजी ॥ या ॥ ३० ॥ सामायक आदि पांचूं ही चारित्र, त्यांरो विनय करणो यथायोग जी । सेवा भक्ति त्यांरी यथायोग करणी त्यांसूं करणो निरदोष संभोगजी ॥ या ॥ ३१ ॥ आसातना टालणी ने विनय करणू, भक्ति करि देणो वहु सनमानजो । गुण ग्राम करि ने दीपावणा त्यांने, दरशन विनय छै शुद्ध श्रद्धानजी ॥ या ॥ ३२ ॥ सावज्झ मन ने परो निवारै, ते सावज्झ वारै प्रकार जो । वारै प्रकारे निरवद्य मन प्रवर्तावे, तिणसुं निरजरा हुवै श्रीकारजी ॥ या ॥ ३३ ॥ इमहिज सावद्य वचनरा भेद छै, तिण सावद्य ने देवै निवारजी । निरवद्य वचन वोलै निरदूषण, ते वारै ही वोल विचार जी ॥ या ॥ ३४ ॥ काया अजयणा सूं नहीं प्रवर्तावै,

तिणरा भेद कह्या सातजी। ज्यूं सातूं ही काया जयणा सूं प्रवर्तावै, जब कर्म तणो हुवै घातजी ॥ या ॥ ३५ ॥ लोग व्यवहार विनय कह्यो सात प्रकारे, गुरु समीपै वर्त्ततो तामजी। गुरुवादि करै छांदै चालणो, ज्ञानादिक हेतै करणो त्यांरो कामजी ॥ या ॥ ३६ ॥ भणायो त्यांरो विनय करणो, आरत गवेषणा करिवो तामजी। प्रस्तावे अवशरनूं जाण होवणो, सर्व कार्य करणा अभिरामजी ॥ या ॥ ३७ ॥ वैयावच तप छै दश प्रकारे, ते वैयावच साधांरी जाणजी। कर्मांरी कोडि खपै छै तिण थी। नैडी हुवै निरवाणजी ॥ या ॥ ३८ ॥ सज्भाय तप छै पांच प्रकारे, जे भाव सहित करै सोयजी। अर्थ ने पाठ विवरा शुध गुणियां, कर्मांरी कोडि खय होयजी ॥ या ॥ ३९ ॥ आर्त्त रौद्र ध्यान निवारै, ध्यावै धर्मने शुक्ल ध्यानजो। ध्यावतां ध्यावतां उत्कृष्ट ध्यावै, तो उपजै केवल ज्ञानजी ॥ या ॥ ४० ॥ विवशग तप छै तजवारो नाम, ते द्रव्यै ने भावै छै दोयजी। द्रव्ये विवशग च्यार प्रकारे, ते विवरो सुणो सहु कोयजी ॥ या ॥ ४१ ॥ शरीर विवशग शरीर नुं तजवो, इम गण विवशग जाणजी उपधि ने तजवो ते उपधि विवशग। भात पाणी ने इमहिज पिछाणजी ॥ या

॥४२॥ भावे त्रिवशग रा तीन भेद छे, कपाय संसार ने कर्मजी। कषाय त्रिवशग च्यार प्रकारे, क्रोधादिक च्यारूं छोड्यां धर्मजी ॥ या ॥ ४३ ॥ संसार त्रिवशग संसार नो तजवो, तिणरा भेद छै च्यारजी। नारकी तिर्यंच मनुष्य ने देवा, त्यांने तजने त्यांसू हुवे न्यार जी ॥ या ॥४४॥ कर्म त्रिवशग आठ प्रकारे, ते तजणा आठूं ही कर्मजी। त्यांने ज्यूं ज्यूं तजे ज्यूं हलका होवै, एहवी करणी छै निरजरा धर्मजी ॥ या ॥ ४५ ॥

॥ भावार्थ ॥

छै प्रकारकी वाह्य करणी निरजरा की कही अब छै प्रकारे अभ्यन्तर करणी कहते हैं।

१—प्रायश्चित अर्थात् व्रत प्रत्याख्यान में दोष लगा उसका प्रायश्चित्त तप अङ्गीकार करे जिससे जीव अशुभ कर्म क्षय करके निरमला और आराधक होय।

२—विनय तप सात प्रकार सें होता हैं।

१—ज्ञान विनय अर्थात् मति ज्ञान आदि पांचों ज्ञानों का वर्णन विस्तार सहित करे तथा ज्ञान वा ज्ञानावंत के गुण करे।

२—दरशन विनय अर्थात् समकित दरशन का विनय सुश्रुषा और अणआसातना करने से होता हैं।

१—सुश्रुषा विनय तो अनेक प्रकारसे तथा दश प्रकार से गुरु महाराज की तथा अपने रो बड़े साधुवों की करणी सो दश प्रकार कहते हैं—गुरु आवें तब उठके ऊभा होना १, आशण छोड़ना २, आशण आमन्त्रणा तथा हर्ष सहित देना ३, सत्कार देना ४, सनमान देना ५, वंदना करना

६, हाथ जोड़के ऊभा रहना ७, गुरू को आते देख सन्मुख जाना ८, गुरू ऊभा रहें तब तक ऊभा रहना ९, जावें तब पहुंचाने को जाना १० ।

२—अण आशातना विनय ४५ प्रकार से अरिहन्त १, अरिहन्त प्ररूपित धर्म २, आचार्य्य ३, उपाध्याय ४, थविर ५, कुल ६, गण ७, संघ ८, क्रियावादी ९, संभोगी १०, मतिज्ञानी ११, श्रुत ज्ञानी १२, अवधि ज्ञानी १३, मन पर्यव ज्ञानी १४, केवल ज्ञानी १५, इन्हों की आशातना न करणी १, सेवा भक्ति करणी २, गुणग्राम करके दीपाना ३, अर्थात् उपरोक्त पन्द्रह बोल कहे जिन्हों का यह ३ प्रकार से विनय करना तो पंद्रह तीया पैंतालीस हुए ।

३—चारित्र विनय अर्थात् सामायक आदि पांचो चारित्रिया का विनय भक्ति यथायोग करना तथा चारित्रिया से निर्दोष संभोग करना ।

४—मन विनय अर्थात् चारै प्रकार का सावद्य मन को निवारना याने सावद्य मन नहीं प्रवर्त्तावा और चारै प्रकारका निरवद्य मन प्रवर्त्ताना ।

५—वचन विनय अर्थात् चारै प्रकार का सावद्य वचन तजके चारै प्रकार का निरवद्य वचन बोलना ।

६—काया विनय अर्थात् सात प्रकार के कायके जोगों को जयणा युत प्रवर्त्ताना ।

७—लोक व्यवहार विनय सात प्रकार से ।

१—गुरु से समा प्रवर्त्ताना याने गुरु से विमुख नें होना ।

२—गुरु की आज्ञा में रहना ।

३—ज्ञानादिक निमित्त गुरूका कार्य करना ।

४—ज्ञान पढ़ाया जिन्हों का विनय करना ।

५—आरत गवेषणा करनी ।

६—प्रस्तावे अवशर का जानकार होना ।

७—गुरू के सर्व कार्य हर्ष सहित करना ।

३—वैयावच दश प्रकार की वैयावच जयणायुत शुद्ध साधुओं की करना ।

४—सज्झाय पांच प्रकारकी सज्झाय करना ।

५—ध्यान आरत रौद्र ध्यान तजके धर्म और शुक्ल ध्यान ध्याना ।

६—विवशग अर्थात् तजना द्रव्य और भाव जिसमें द्रव्य विवशग च्यार प्रकार और भाव विवशग तीन प्रकार से होता है।

१—द्रव्य विवशग के च्यार भेद ।

१—शरीर विवशग अर्थात् शरीर की विभूषा तजना तथा पादोप गमनादि करना ।

२—गण विवशग अर्थात् गुरू आज्ञा से साधु साध्वी रूपगण को छोड़के अलग एकान्त में सज्झाय ध्यान करना तथा सलेषणा आदि करना ।

३—उपधि विवशग अर्थात् भण्ड उपग्रण तजके नग्न भाव रहना ।

४—भत्त पाण विवशग अर्थात् आहार पानी भोगनें का त्याग ।

२—भाव विवशग तीन प्रकार से ।

१—कषाय विवशग अर्थात् क्रोध मान माया लोभ इन च्यारो कषायों को तजना ।

२—संसार विवशग च्यार प्रकार से नारकी तिर्यञ्च मनुष्य और देव इन च्यार गति मयी संसार को तजना ।

३—कर्म विवशग आठ प्रकार से अर्थात् ज्ञानावरणी आदि आठों कर्मों को तजना ।

यह बारे प्रकार उववाई सूत्र में साधुओं के गुण के कथन में कहे हैं इसलिये यह विनय व्यावचादि की विधि साधु की है।

॥ ढाल तेहिज ॥

यह बारै प्रकारे तप निरजरारी करणी, ते तपस्या करै जाण जाणजी। कर्म उदेरी उदै आणि विखेरै, त्यांने नैडी होसी निरवाणजी ॥ या ॥ ४६ ॥ साधां रै बारै भेद तपस्या करता, जहां जहां निरवद्य जोग रूंधायजी। तहां तहां संवर होय तपस्या रे लारै, तिणसुं पुन्य लागता मिट जायजी ॥ या ॥ ४७ ॥ इण तप मांहिलो तप श्रावक करता, कठै अशुभ जोग रूंधायजी। जब व्रत संवर हुवै तपस्यारै लारै, लागता पाप मिटजायजी ॥ या ॥ ४८ ॥ साधु श्रावक सम-दृष्टि तपस्या करै तो, उत्कृष्टी टलै कर्म छोतजी। कदा उत्कृष्टी रसान आवै तिण तपथी, तो बांधे तीर्थं-कर गोतजी ॥ या ॥ ४६ ॥ इण तप मांहिलो तप अविरती करै तो, तिणरै पिण कर्म कटायजी। केई प्रति संसार करै इण तपथी, वेगो जावै मुक्तिगढ़ म्हांयजी ॥ या ॥ ५० ॥ तपस्या थी आणै संसार नो छेहड़ो, वलि कर्मां रो करै अन्तजी। वलि इण तपस्या तणै प्रतापै, बड़ा संसारी रो सिद्ध होवन्तजी ॥ या ॥ ५१ ॥ कोडा भवांरा कर्म संच्या हुवै तो, खिणमें देवै

खपायजी। एहवो छै तप रतन अमोलक, तिणरा गुणरो पार न आयजी ॥ या ॥ ५२ ॥ निरजरा तो निरवद्य उजलो हुवांथी, कर्म निवर्ते हुवै न्यारजो। तिण सुं निरजरा नै निरवद्य कही छै, बीजूं निरवद्य नहीं छै लिगारजी ॥ या ॥ ५३ ॥ इण निरजरा तणी करणी छै निरवद्य, तिण सूं कर्मा से निरजरा होय जो। निरजरा ने निरजरारी करणी, जुदी जुदी छै दोयजी ॥ या ॥ ५४ ॥ निरजरा तो मोच तणो अंस निश्चय, ते देश थी उजलो छै जीवजी। जिणरै निरजरा करणरी चूंप लागी छै, तिण दीधी मुक्तिरी नीवजी ॥ या ॥ ५५ ॥ सहजै निरजरा अनादिरी हुवै, छै, ते होय होयी ने मिटजायजी। ते कर्म बंध सूं नहीं निवरत्यो। ते संसार में गोता खायजी ॥ या ॥ ५६ ॥ निरजरारो करणी ओलखावण, जोड़ कीधी श्रोजी द्वारा मझारजो। सम्वत् अट्ठारे ने वर्ष छपने, चैत वद बीज ने गुरुवारजी ॥ या ॥ ५७ ॥

॥ भावार्थ ॥

अणशण उणोदरी आदि बारै प्रकार का तप कहा सो निरजरा की करणी है इसके करने से जीव कर्म मयी रज को खपा के उज्वल होता है, पूर्व संचित कर्मों को खपाने के निमित्त उदय में त्याके कष्टों को समपरिणाम सहन करने से निरजरा होती है ऐसी करणी करने से निरवाण पद नजदीक होता है, साधु मुनिराज बारै प्रकार का तप करै

जंत्र जहां जहां निरवद्य जोग रुके तब तहां तहां उनके संवर होता है अर्थात् शुभ योगों से पुन्य बंधते वे पुन्य रुके तथा अशुभ कर्म खय होके जीव उजला हुवा सो निरजरा, ऐसे ही बारे प्रकार का तपमें से श्रावक तप करै तब ज्यो ज्यो अशुभ जोग रुंधे उनसे पाप रुके सो व्रत संवर हुवा और अशुभ कर्म खय होके जीव उजला हुवा सो निरजरा हुई, और इस निरजरा की करणी बारे प्रकार में से यदि अव्रती तथा मिथ्याती करै तो उनके भी अशुभ कर्म खय होते हैं और जीव निरमला अर्थात् उजला होता है कँई मिथ्याती जीव तो शुद्ध करणी करने से अनन्त संसारी के प्रति संसारी होके अनुक्रम जलद ही मोक्ष स्थान पाते हैं, साधु श्रावक समदृष्टि तप करने से उत्कृष्ट कर्म छोत टाल के उत्कृष्ट रसान आने से तीर्थंकर गोत्र बांधते हैं, तप सें संसार का अन्त करते हैं बहुसंसारी का लघुसंसारी होके सकल कर्म रहित होकर सिद्ध होते हैं, तपस्या करने से क्रोड़ों भव के संचे हुए कर्म छिण मात्र में खय होते हैं ऐसा अमूल्य रतन तप है इसके गुणों का पार नहीं है निरजरा अर्थात् देशतः जीव निरमला और निरजरा की करणी जो बारे प्रकार की ऊपर कही है सो यह दोनूं ही निरवद्य है दोनूं ही आज्ञा मांहि है दोनूं ही आदरने योग्य है, कर्मों से निवर्त्तै सोही निरजरा है इसीलिये निरजरा को निरवद्य कही है, जितना जितना जीव उजला है सोही निरजरा है और मोक्ष का अंश है तथा जिस करणी से उजला होता है सो निरजरा की करणी है वो निरवद्य है उसकी जिन आज्ञा है जिस करणी की जिन आज्ञा नहीं है सो सावद्य है उससे पाप कर्म बंधते हैं किन्तु निरजरा नहीं होती और न पुण्य बंधता है, पुण्य तो निरजरा की करणी करते शुभ जोगों से बंधता है जिसका वर्णन पुण्य पदार्थ को ओलखाया वहां विस्तार पूर्वक कहा ही है, इस सातमा पदार्थ में निरजरा को ओलखाया है सो इस जगह निरजरा किसको कहना और निरजरा की करणी किसे कहना इसका वर्णन सविस्तार स्वामी श्री भीखनजी

महाराजने ढाल जोड़के मेवाड़ देशान्तरगत नाथद्वारा शहर में विक्रम सम्वत् १८५६ चैत्र वदी द्वितीया गुरुवार को कहा जिसका भावार्थ निज बुद्ध्यानुसार मैंने किया जिसमें कोई अशुद्धार्थ हो उसका मुझे मिच्छामि दुक्कडं ।

॥ इति सातमा निरजरा पदार्थम् ॥

॥ अथ आठमां बंध पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

आठमूं पदारथ बंध छै, तिण जीवने राख्यो बंध । जे बंध पदार्थ न उलख्यो, ते जीव अछै मोह अंध ॥ १ ॥ बंध थकी जीव दवियो रहै, कांई न रहै उघाड़ी कोर । ते बंध तणा प्रबल थकी, कांई न चालै जोर ॥ २ ॥ तलाव रूप तो जीव छै, तिण में पड़िया पाणी ज्युं बन्ध जाण । निकलता पाणी रूप पुन्य पाप छै, बंध ने लीजो एम पिछाण ॥ ३ ॥ एक जीव द्रव्य छै तेहना, असंख्याता प्रदेश । सघला प्रदेशां आश्रवद्वार छै, सघला प्रदेशां कर्म्म प्रवेश ॥ ४ ॥ मिथ्यात अविरत ने प्रमाद छै, वलि कषाय जोग विख्यात । ये पांच तणा बीस भेद छै, पनरै आश्रव जोग में समात ॥५॥ नालारूप आश्रव नाला

कर्मना, ते रूंध्या हुवै संवर द्वार। कर्मरूप जल आवतो रहै, जब बंध न हुवै लिगार ॥ ६ ॥ तलावरो पाणी घटै तिण विधै, जीवरै घटै छै कर्म्म। जब कांयक जीव उजलो हुवै, ते छै निरजरा धर्म्म ॥ ७ ॥ कदे तलाव रीतो हुवै, सर्व पाणी तणो हुवै सोख। ज्यूं सर्व कर्म सोखत हुवै, जिम रीता तलाव सम मोख ॥ ८ ॥ बंध छै आठ कर्मा तणो, ते पुद्गलरी पर्याय। तिण बंध तणो ओलखना कहूं, ते सुणज्यो चित ल्याय ॥ ६ ॥

॥ भावार्थ ॥

आठमां वन्ध पदार्थ कहते हैं जीवके कर्म बंधे हुए हैं उसका नाम वन्ध है जिससे जीवके ज्ञानादि गुण दबे हुए हैं, जीव चेतन अनन्त बली और प्राक्रमी है परन्तु जहांतक जीव कर्म्म मयी पाश से बंधा है तहां तक जीव का जोर अर्थात् वश नहीं चलता तथा जीवके ज्ञानमयी नेत्र मोह कर्म से आच्छादित हो रहे हैं जिससे मार्ग को नहीं देखता इसलिये वन्ध और मोक्ष को जानने के लिये दृष्टान्त कहते हैं जीव मयी तालाव है भरे हुए पानी रूप वन्ध और निकलता पानी रूप पुन्य पाप है, तालाव में पानी आने को नाले होते हैं तो इस जीव मयी तालाव के मिथ्यात अव्रत प्रमाद कषाय और जोग यह पञ्च आस्रव रूप पांच नाले हैं जिससे कर्म्म मयी पानी आता है, जब जीव आस्रव रूप नालों को रोक कर वन्ध रूप जो वन्धा हुआ पानी है उसे उलेची उलेची अर्थात् कर्मों को उदेरी उदेरी अणशण उणोदरी आदि बारे प्रकार का तप करके पुन्य पाप रूप पानी को तालाव से अलग करने से अनुक्रमे सर्व कर्मों का नाश अर्थात् क्षय करके रीता तालाव रूप मोक्ष पद पाता है,

तात्पर्य तालाब में पानी भरा है वैसे ही जीव मयी तालाब में बन्धे हुए कर्म रूप पानी है जहांतक उदय में नहीं आवै तहांतक उन्हीं पुन्य पाप की प्रकृतियों का नाम बन्ध है जिसका यथार्थ वर्णन करते हैं।

॥ ढाल ॥

(अरि अहि कर्म विडंवणा प्रदेशी)

वंध नीपजै छै आस्त्रव द्वार थी, तिण वंध ने कह्यो पुन्य पापोजी। ते पुन्य पाप तो द्रव्यं रूप छै, भाव वन्ध कह्यो जिन आपोजी॥ वंध पदारथ ओलखो॥ १॥ ज्यूं तीर्थंकर आय ऊपना, ते द्रव्य तीर्थंकर जाणोजी। भाव तीर्थंकर कहिजे तिण समे, ते होसी तेरमे गुणठाणोजी॥ वं॥ २॥ ज्यूं पुन्य पाप लागो कह्यो, ते तो द्रव्ये छै पुन्य पापोजी। भावे पुन्य पाप तो उदय हुवां, दुःख सुख भोगवै हर्ष संतापो जी॥ वं॥३॥ तिण वंध तणा दोय भेद छै, एक पुन्य तणो वंध जाणोजी। दूजो वंध छै पापरो, दोनूं वंधरो करिजो पिछाणोजी॥ वं॥ ४॥ पुन्य नूं वंध उदय हुवां जीवरै, सुखसाता हुवै छै सोयोजी। पापरो वन्ध उदय हुवां, विविध पणै दुःख होयोजी॥ वं॥ ५॥ वंध उदय नहीं त्यां लगि जीवने, सुख दुःख मूल न होयोजी। वंध तो छतारूप लागो रहै, फोड़ा न पाडै कोयोजी॥ वं॥ ६॥ तिण वंध तणा च्यार भेद छै,

थांने रूड़ी रीत पिछाणोजी । प्रकृति बंध ने थित बंध दूसरो, अनुभाग ने प्रदेश बंध जाणोजी ॥ बं ॥ ७ ॥ प्रकृति बंध कर्मां री जुई जुई, कर्मां रा स्वभावरै न्यायोजी । बंधी छै तिण समे बंध छै, जैसी बांधी तैसी उदय आयोजी ॥ बं ॥ ८ ॥ तिण प्रकृति ने बांधी छै काल सूं, इतरा काल तांई रहसी तामोजी । पछै तो प्रकृति बिखलावसी, थित सूं प्रकृति बन्ध छै आमोजी ॥ बं ॥ ९ ॥ अनुभाग बन्ध रसविपाक छै, जिसो जिसो रस देसी तायोजी । ते पिण प्रकृति बन्ध नू रस कह्यो, बंध्यो जिसो रस उदय आयोजी ॥ बं ॥ १० ॥ प्रदेश बन्ध कह्यो प्रकृति बन्ध तणो, प्रकृति रा अनन्त प्रदेशोजी । ते लोलीभूत जीव सूं होय रह्या, प्रकृति बन्ध ओलखाई विशेषोजी ॥ बं ॥ ११ ॥ आठ कर्मां री प्रकृति जुई जुई, एकेकांरा अनंत प्रदेशोजी । इक इक प्रदेशे जीवरै, लोलीभूत हुई छै विशेषोजी ॥ बं ॥ १२ ॥

॥ भावार्थ ॥

जीव के प्रदेशों के कर्म बंधे हैं उन्हें बंध कहते हैं वह बंध आस्रव द्वार से हुआ है जीव आस्रव से पुण्य और पाप बंधा है सो ही बंध है पुण्य पाप तो जीव के उदय होय तब कहते हैं परंतु बंधे हैं जिन्हों को भी द्रव्य निक्षेप की अपेक्षाय पुण्य पाप कहा है जैसे गर्भावास में तथा गृहस्थाश्रम में रहते हुए तीर्थङ्कर को द्रव्य तीर्थङ्कर कहते हैं परंतु भाव तीर्थङ्कर केवली

गुणस्थान होते हैं वैसे ही पुण्य पाप तो उदय होय तब हैं परंतु पुण्य पाप मयी उदय होने वाले पुद्गल जो जीव बांधे हैं उनको भी द्रव्य पुण्य पाप कहे हैं वे पुद्गलों का बंध जीव के दोय प्रकार से हैं एक तो पुण्य बंध और दूसरा पाप बंध, पुण्य का बंध उदय होने से जीवके सुखसाता होती है और पाप का बंध उदय होने से जीवके दुःख असाता होती है परंतु बंधे हुए उदय नहीं होय जब तक जीव के सुख दुःख कदापि नहीं होता है इसलिये जीव के पुण्य पाप बंधा है उसका नाम बंध है वह च्यार प्रकार से है, प्रकृति बंध १, स्थिति बंध २ अनुभाग बंध ३, प्रदेश बंध ४ यह च्यार भेद हैं जिसका वर्णन् करते हैं प्रकृति बंध कर्म स्वभाव के न्याय, अर्थात् कर्म बंधे सो प्रकृति पणै बंधे हैं जैसे ज्ञानावरणी कर्म की ५ प्रकृति, दर्शनावरणी कर्म की ९ प्रकृति, मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति अंतराय कर्म की ५ प्रकृति, वेदनी कर्म की २ प्रकृति, नाम कर्म की ९३ प्रकृति, गोत्र कर्म की २ प्रकृति और आऊषा कर्म की ४ प्रकृति हैं, यह आठ कर्म्मों की १४८ प्रकृति हैं सो जीव के बंधी वह प्रकृति बंध है, यही प्रकृतियों स्थिति सहित बंधी है इसलिये स्थिति बंध, यही प्रकृतियां उदय होने से शुभाशुभ रस जीव को देगी इसलिये अनुभाग बंध, और यही प्रकृतियां अनन्तानन्त प्रदेशी जीवके असंख्याता प्रदेशो से लोलीभूत हो रही है इसलिये प्रदेश बंध कहा है, अब आठ कर्म्मों की स्थिति कितनी कितनी है सो कहते हैं।

॥ ढाल तोहिज ॥

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी वेदनी, वलि आठमूं कर्म अन्तरायोजी। यांरी थित छै सघलांरी सारखी, ते सुणज्यो चित्त ल्यायोजी ॥ बं ॥ १३ ॥ थित या च्यारूं कर्मां तणी, अंतर महुरत प्रमाणोजी। उत्कृष्टी

थित यां च्यारूं तणीं। तीस कोड़ाकोड़ि सागर लग जाणोजी ॥ वं ॥ १४ ॥ थित दर्शण मोहनीय कर्म्म नी, जघन्य अन्तर महूरत प्रमाणोजो। उत्कृष्टी स्थित छै एहनी, सित्तर कोड़ाकोड़ि सागर जाणोजी ॥ वं ॥ १५ ॥ जघन्य थित चारित मोहनोय कर्म्म नो, अन्तर महूरत कहि जगदीशोजी। उत्कृष्टी स्थित छै एहनी, सागर कोडा कोडि चालीसोजो ॥ वं ॥ १६ ॥ थित छै आऊखा कर्म री, जघन्य अन्तर महूरत होयो जी। उत्कृष्टी सागर तेतीसनी, आगै आउषारी स्थिति न कोयोजी ॥ वं ॥ १७ ॥ स्थित नाम गोत्र कम तणी, जघन्य आठ महूरत सोयोजी। उत्कृष्टी इक इक कर्म्म नी, बीस कोड़ा कोड़ि सागर होयोजो ॥ वं ॥ १८ ॥ एक जीवरै आठ कर्म्मां तणा, पुद्गलरा प्रदेश अनन्तोजी। ते अभव्य जीवां थी मापियां, अनन्त गुणा कह्या भगवन्तोजी ॥ वं ॥ १९ ॥ ते अवश्य उदय आसी जीवरै, भोगवियां बिन नाहिं छूटायोजी। उदै आयां विन सुख दुःख हुवै नहीं, उदय आयां सुख दुःख थायोजी ॥ वं ॥ २० ॥ शुभ परिणामें जे कर्म्म बांधिया। ते शुभ पणैं उदय आसीजी। जे अशुभ परिणामें बांधिया, तिण कर्म्मां सूं दुःख थासीजी ॥ वं ॥ २१ ॥ पञ्च वर्णां आठूं हीं

कर्म छै। दोय गन्ध ने रस पांचूंहीजो। चोपरसो आठूं ही कर्म छै, रूपो पुद्गल कर्म आठूंहीजो ॥ व ॥ २२ ॥ कर्म तो लूखाने चोपड्या। वलि टंडाने उन्हा होयोजी। कर्म हलका नहीं भारी नहीं। सुंहाला ने खरदरा नहीं कोयो जी ॥ वं ॥ २३ ॥ कोई तलाव पूरण भर्यो, खाली ठोर न कोयोजी। ज्यूं जीव भर्यो कर्मा थको। आ उपमा देशथकी जोयोजी ॥ वं ॥ २४ ॥ असंख्याता प्रदेश एक जीवरा। ते असंख्याता जेम तलावोजी। सघला प्रदेश भर्या कर्मां थकी, जाणें भरी चोखूणी वावोजी ॥ वं ॥ २५ ॥ इक इक प्रदेश छै जीवरो। तिहां अनन्ता कर्मां रा प्रदेशोजी। ते सघला प्रदेश भरिया छै वाव ज्युं। कर्म पुद्गल कियो छै प्रवेशोजी ॥ वं ॥ २६ ॥ तलाव खाली हुवै छै किण विधे। पहिलां नालो देवै रूंधाणोजी। पछै मोरियांदिक छोडै तलावरी, जब तलाव रीतो होय जायो जी ॥ वं ॥ २७ ॥ ज्यूं आस्रव नाला रूंधवें। तपस्या करै हर्ष सहितो जी। जब छेहडो आवै सर्व कर्म नूं, तब जीव हुवै कर्म रहितो जी ॥ वं ॥ २८ ॥ कर्म रहित हुवां जीव निरमलो। तिण जीव ने कहिजे मोखोजी। ते सिद्ध हुवो छै शाश्वतो, सर्व कर्म बन्ध कर दियो सोखोजी ॥ वं ॥ २६ ॥ जोड़ कीधी छै

बन्ध ओलखायवा। ओजी द्वारा शहर मभारोजी। सम्वत् अठारे वर्ष छप्पनें, चैत्र वद बारस शनिवारो जी ॥ बं ॥ ३० ॥

॥ भावार्थ ॥

ज्ञानावरनीय दरशनावरनीय वेदनीय और अंतराय इन च्यार कर्म्मों की स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त्त उत्कृष्टी ३० तीस कोड़ा कोड़ि सागर की, मोहनीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त्तकी और उत्कृष्टी स्थिति दरशन मोहनीय की तो ७० कोड़ा कोड़ि सागर, चारित्र मोहनीय की ४० कोड़ा कोड़ि सागर की आऊषा कर्म की स्थिति जघन्य अंतर मुहूर्त्त उत्कृष्टी ३३ सागर की, नाम कर्म गौत्र कर्म की स्थिति जघन्य ८ आठ मुहूर्त्त की उत्कृष्टी २० वीस कोड़ा कोड़ि सागर की है इस प्रकार आठों कर्मों की प्रकृतियां की स्थिति बंध जीव के है सो संसार में अभव्य जीव हैं उनसे अनन्त गुणें अधिक एक एक जीवके कर्म प्रदेश है, तात्पर्य एक एक जीवके असंख्याता असंख्याता प्रदेश हैं, और एक एक प्रदेशोंपर अनन्ते अनन्ते कर्म प्रदेश बंधे हैं उन बंधे हुये कर्म्मों का नाम बंध है वे अवश्य उदय में आवेंगे तब जीव को पुदगलीक सुख दुःख होगा, जो शुभ परिणामों से बांधे हैं वे शुभ पणें उदय आवेंगे, आठों ही कर्मों के पुदगलों में पांच वरण दोय गंध पांचरस और लूखा चोपड्या (चिकणा) ठंडा ताता ये च्यार स्पर्श हैं, कर्म पुद्गल हलके भारी मुलायिम और खरदरा नहीं हैं, जैसे तलाव पानी से सम्पूर्ण भरा हो वैसे ही जीवके असंख्याता प्रदेशमयी तलाव कर्म प्रदेश रूप पानी से पूर्ण भरा हैं, तलाव के पानी आनेके नाले रोककर भरे हुये पानी को निकालने को मोरियां खोल कर निकाले तब तलाव पानी रहित होवे वैसे ही जीव मयी तलाव के आश्रव रूप नालों को रूंधकर कर्म रूप जो पानी है उसे तपस्या करिके निरजरा मयी मोरियों से निकालते निकालते सर्व कर्म रहित होजाय जब उस ही जीव का नाम

मोक्ष है निरमला हुवा इसलिये निरवाण और सर्व कार्य सिद्ध किये इस लिये जीवका नाम सिद्ध है, यह आठमा पदार्थ बंध ओलखानें को स्वामी श्री भीखनजीने मेवाड़ देशान्तरगत नाथ द्वारे में सम्वत् १८५६ चैत्र विद १२ शनिवार को ढाल जोड़ी जिसका भावार्थ मैंने तुच्छ बुद्धानुसार किया जिस में कोई अशुद्धार्थ हो उस का मुझे वारंवार मिच्छामि दुकड़ं है ।

॥ इति अष्टम पदार्थ ॥

॥ अथ नवमां मोक्ष पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

मोक्ष पदार्थ नवमं कह्यो । ते सघलां में श्रीकार । ते सर्व गुणां सहित छे । त्यां सुखांरो छेह न पार ॥ कर्म्मां सूं मुंकाणा ते मोक्ष छै । त्यांरा छै नाम अनेक, परमपद निर्वाण नें मुक्ति छै, सिद्ध शिव आदि नाम विशेष ॥ २ ॥ परम पद उत्कृष्टो पामियो । तिण सूं परमपद त्यांरो नाम । कर्म दावानल मेट शीतल थया. तिण सूं निर्वाण नाम छै ताम ॥ ३ ॥ सर्व कार्य्य सिद्धा छै तेहना । तिण सूं सिद्ध कह्या छै ताम उपद्रव करनें रहित हुवा । तिण सूं शिव कह्यो त्यांरो नाम ॥ ४ ॥ इण अनुसारे जाणिज्यो । मोक्षरा

गुण प्रमाणें नाम। हिंव मोक्ष तणा सुख वर्णवुं। ते सुणो राखि चित ठाम ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

मोक्ष पदार्थ नवमां है सो सर्व पदार्थों में श्रीकार है सर्व गुण संयुक्त है और अनन्त सुख है जिसका पार नहीं है, कर्म्मों से मूकाणा याने कर्म्म रहित हुए इससे मोक्ष कहा है परम कहिये उत्कृष्ट पद प्राप्त हुए इसलिये परमपद और कर्म रूप दावानल को मेट के शीतली भूत हुए इस वास्ते निर्वाण नाम कहा है, सर्व कार्य्य सिद्ध किये जिस से सिद्ध और उपद्रव रहित हुए इस लिये उन का नाम शिव है, इत्यादि गुण प्रमाणे अनेक नाम कहे हैं वे सिद्ध अनन्त सुखी हुए जिसका वर्णन करते हैं।

॥ ढाल ॥

(पाखंड वधसी आरै पांचमेरै परदेशी)

मोक्ष पदारथ रा छै सुख शाश्वता रे, त्यां सुखां रो कदे न आवै अन्त रे। ते सुख अमोलक निज गुण जीवना रे, अनन्त सुख भाख्या श्री भगवन्त रे ॥ मोक्ष पदारथ छै सारां सिरै रे ॥ १ ॥ तीन कालना सुख देवता तणा रे, ते सुख पिण इधका घणा अथाग रे। ते सुख सघला ही सुख इक सिद्धना रे, तुल्य न आवै अनन्तमें भाग रे ॥ मो ॥ २ ॥ संसार ना सुख तो छै पुद्गल तणा रे, ते सुख निश्चय रोगीला जाण रे। कर्मां वश गमता लागै जीवनें रे, तिण सुखां री

बुद्धिवन्त करो पिछाण रे ॥ मो ॥ ३ ॥ पाम रोगीलो हुवै तेहने रे, गमतो लागै छै अत्यन्त खाज रे। एहवा रोगीला सुख छै पुन्य तणा रे, तिण सूं कदे न सीझै आतम काज रे ॥ मो ॥ ४ ॥ एहवा सुखां सूं जीव राजी हुवै रे, तिण सूं लागै छै पाप कर्म पूर रे। पछै दुःख भोगवै नरक निगोद में रे, मोक्ष सुखां सूं पड़िया दूर रे ॥ मो ॥ ५ ॥ छूटा जन्म मरण दावानल तेहथी रे, ते तो छै मोक्ष सिद्ध भगवन्त रे। त्यां आठूं ही कर्मां ने अलगा किया रे, जब आठूं ही गुण नीपना छै अत्यन्त रे ॥ मो ॥ ६ ॥ ते मोक्ष सिद्ध भगवन्त तो इहां ही हुवा रे, पछै एक समै ऊंचा गया थेट रे। सिद्ध रहिवा नुं क्षेत्र छै तिहां जई रह्या रे, अलोक सूं जाय अड़िया छै नेठ रे ॥ मो ॥ ७ ॥ अनन्तो ज्ञान ने दरशन तेहनुं रे, वलि आतमिक सुख अनन्तो जाण रे। क्षायक समकित सिद्ध वीतरागने रे, अटल अवगाहना छै निरवाण रे ॥ मो ॥८॥ अमूर्ति पणो त्यांरो प्रगट हुवो रे, हलका भारी न लागै मूल लिगार रे। तिण सूं अगुरु लघु ने अमूरति कह्यो रे, ए पिण गुण त्यां में श्रीकार रे ॥मो॥६॥ अन्तराय कर्म सूं तो ते रहित छै रे, त्यांने पुद्गल सुख चाहिजे नांहि रे। ते निजगुण सुख मांहि झिल रह्या

रे, ऊणायत रही नहीं छै काहि रे ॥ मो ॥१०॥ छूटा कलकलीभूत संसार थी रे, आठूं ही कर्म्म तणो करि सोष रे। अनन्ता सुख पाम्या शिव रमणी तणा रे, त्यांने तो कहिजे अविचल मोख रे ॥ मो ॥ ११ ॥ त्यांरा सुखां ने नहीं कोई ओपमा रे, तीनूं ही लोक संसार मझार रे। एक धारा छै त्यांरा सुख शाश्वता रे, ओछा अधिका सुख कदे न लिगार रे ॥ मो ॥ १२ ॥ तित्थसिद्धा ते तीर्थ में सिद्ध हुवा रे, अतित्थ सिद्ध विनतीर्थ सिद्ध थाय रे। तीर्थंकर सिद्धा ते तीर्थ थापने रे, अतीर्थंकर सिद्धा विनतीर्थ थापी ताय रे ॥ मो ॥ १३ ॥ सयं बुद्धि सिद्धा ते पोते समझने रे, प्रत्येक बुद्धि सिद्धा ते कांयक वस्तु देख रे। बुद्ध बोही सिद्धा औरां कनै समझने रे, उपदेश सुणि ने ज्ञान विशेष रे ॥ मो ॥ १४ ॥ स्वयं लिंगी सिद्धा साधुरा भेषमें रे, अन्यलिंगी सिद्धा अन्य लिङ्ग मांहि रे। गृहलिंग सिद्धा ग्रहस्थ रा लिंगमें रे, स्त्री लिङ्ग सिद्धा स्त्री लिङ्ग में ताहि रे ॥ मो ॥ १५ ॥ पुरुष सिद्धा ते पुरुष रा लिङ्ग में रे, नपुंसक सिद्धा नपुंसक लिङ्ग में सोय रे। एक सिद्धा समय में एकहिज हुवा रे, अनेक सिद्धा ते एक समय अनेक सिद्ध होय रे ॥ मो ॥ १६ ॥ ज्ञान दरशन चारित्र ने तप थकी

रे, सघला हुवा छै सिद्ध निर्वाण रे। यां च्यारां विन सिद्ध कोई नहिं हुवो रे. यह च्यारूं ही मार्ग मोक्ष रा जाण रे॥ मो ॥ १७॥ ज्ञान थी जाण लेवै सर्व भाव नै रे, दरशन सूं श्रद्ध लेवै स्वयमेव रे। चारित्र सूं कर्म रुकै छै आवता रे, तप करी कर्म तोडै ततखेव रे ॥ मो ॥ १८ ॥ यह पनरेही भेदे सिद्ध हुआ तिके रे, सघलां री करणी जाणो एक रे। वलि मुक्ति में सघलां रा सुख सारपा रे, ते सिद्ध छै पनरे भेदे अनेक रे ॥ मो ॥ १९ ॥ मोक्ष पदारथ ने ओलखा-यवा रे, जोड़ कीधी छै श्रीजो द्वारा मभ्कार रे। सम्वत् अट्ठारे छप्पन्ना वर्षमें रे, चैत्र सुदि चोथ शनिसरवार रे ॥ मो ॥ २० ॥

॥ भावार्थ ॥

जीव सर्व कर्म रहित हो जाता है उसे मोक्ष कहते हैं, अर्थात् अनादि काल से तेल और तिल लोलीभूत जैसे जीव कर्म लोलीभूत, धातु, मिट्टी लोलीभूत जैसे जीव कर्म लोलीभूत, घृत, दुग्ध लोलीभूत जैसे जीव कर्म लोलीभूत हैं, परन्तु घाणियादिक के उपाय से तेल खल रहित होवै वैसे ही तप संयमादि उपाय से जीव कर्म रहित होय सो मोक्ष भेरणादिक के उपाय से घृत छाछ रहित होय वैसे ही जीव तप संयमादि उपाय से कर्म रहित होय सो मोक्ष अग्नियादि उपाय से धातु मिट्टी अलग होय वैसे ही तप संयमादि उपाय से कर्म रहित होय सो मोक्ष है, पुद्गलों का संगी होके जीव पंच इन्द्रियों की विषयों से विषयी मोह से शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में रक्त हो रहा है, निजगुण

को भूल कर परगुणों से राच रहा है जिस से ज्ञानादि गुणों का लोप होके मिथ्यात प्रमाद कषायादि आस्रव द्वारों से कर्म ग्रहण करता है तब कर्मानुसार च्यार गति चौरासी लक्ष जीवायोनि में परिभ्रमण कर रहा है, जन्म मरण रूप दावानल में जल रहा है किन्तु भले परिणामों से कभी मनुष्य जन्म पाके पुन्योदय से आर्य देश उत्तम कुल निरोग शरीर पुर्ण इन्द्रियां और सद्गुरु का संयोग मिलने से या स्वतहः ही क्षयोपशमानुसार श्रीजिन प्ररूपित धर्ममार्ग को जानकर संसार को अनित्य जानता है और प्रत्याख्यान प्रज्ञा से सर्व सावद्य जोगों को त्याग कर निरारंभी निःपरिग्रही होता है तब तप संजमादि करिके पूर्व संचित कर्म खपाते खपाते क्षपक श्रेणि चढ़कर अनुक्रमे शुक्ल ध्यान से तेरमें गुणस्थान में केवल अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान दरशन प्राप्त करता है फिर चौद्रमें गुणस्थान में वेदनी नाम गौत्र इन तीनों कर्मों को एकदम क्षय करके अन्त समय में आयुष्य कर्म खपाके मोक्षपद प्राप्त करता है, अर्थात् सर्व कर्म रहित होके एक समय ऊर्द्ध गति कर लोकाग्र में विराजमान होता है वहां शाश्वता सुखी है उन सुखों को कोई उपमा नहीं है, परन्तु समझाने के लिये दृष्टान्त देके कहा है गत काल में देवलोकों में देवता हुए जिन्हों का सुख, वर्त्तमान में देवता है उनका सुख, और अनागत काल में जो देवता होंगे जिन्हों का सुख एकत्र करिके उन्हें अनन्तावन्त वारङ्गणादे सिद्ध के सुखों से तुलना करे तो वे सुख उन आतमीक सुखों के अनन्तवें भाग भी नहीं है क्योंकि देवताओं के सुख तो पुद्गलीक अनित्य है और सिद्ध के आतमीक सुख सदा सर्वदा एकसा नित्य है, संसार के सुख तो पुद्गलीक और रोगीले हैं जैसे पाम रोगी को खाज अर्थात् कुचरना अत्यन्त अच्छा और मिष्ट लगे वैसे ही कर्म वश पुन्य के पुद्गलीक सुख जीव को अच्छे लगते हैं परन्तु इन सुखों से आतमा का कार्य सिद्ध कदापि नहीं होता है, मोह कर्म वश पुद्गलीक सुखों से जीव राजी होता है परन्तु इन सुखों में गृद्धी होके जीव पाप

कर्मोपार्जन करि के नरक निगोदादि में दुःख भोगता है और मोक्ष के आतमीक सुखों से दूर होता है इस लिए यह सुख कुछ भी नहीं है असल सुख तो मुक्तिके हैं सो सदा सर्वदा एकसा अनन्ते हैं सो जन्म मरणरूप दावानल से अलग होके सिद्ध भगवन्त हुए हैं, जिन्होंने आठूं ही कर्म अलग करिके आठ गुण प्रगट किये हैं सो कहते हैं।

१—ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होने से केवल ज्ञान।

२—दर्शनावरणीय कर्म क्षय होने से केवल दर्शन।

३—वेदनीय कर्म क्षय होनेसे आत्मिक सुख।

४—मोहनीय कर्म क्षय होने से शीतली भूत स्थिर प्रदेश तथा क्षायक समकित।

५—नाम कर्म क्षय होने से अमूर्तिक भाव।

६—गोत्र कर्म क्षय होने से अगुरू लघू अर्थात् हलका भारी पणा रहित।

७—अन्तराय कर्म क्षय होने से अनन्त वीर्य अन्तराय रहित।

८—आयुष्य कर्म क्षय होने से अटल अवगाहना।

उपरोक्त आठ गुणों सहित सिद्ध कर्मों से मुकाये जिसका नाम मोक्ष है वे सिद्ध भगवन्त कलकलीभूत संसार से छुटकारा पाके शिव रमणी के अनन्त सुख पाये हैं सो १५ प्रकार से सिद्ध होते हैं जिन्हों का नाम।

१—तित्थ सिद्धा, अर्थात् साधू साध्वी श्रावक श्राविका मयी च्यार तीर्थ में से सिद्ध हुए।

२—अण तित्थ सिद्धा, अर्थात् च्यार तीर्थ विना अन्य तीर्थी पणे में करणी करके केवल ज्ञान दर्शन उपार्जन कर सिद्ध हुए।

३—तीर्थंकर सिद्धा, अर्थात् तीर्थ थापके सिद्ध हुए।

४—अतीर्थंकर सिद्धा, अर्थात् तीर्थ थापे विना सामान्य केवली सिद्ध हुए।

५—स्वयंबुद्धि सिद्धा, अर्थात् किसी के उपदेश विना स्वयं प्रतिबोध पाके सिद्ध हुए।

६—प्रत्येक बुद्धि सिद्धा, अर्थात् किसी वस्तु को देख के प्रतिबोध पाये सो सिद्ध हुए।

७—बुद्धिबोध सिद्धा, अर्थात् उपदेश सुनके संयम मार्ग अङ्गीकार करके सिद्ध हुए।

८—स्वयं लिङ्गी सिद्धा, अर्थात् जैन साधू के लिङ्ग में सिद्ध हुए।

९—अन्य लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् जैन विना अन्य लिङ्ग में सिद्ध हुए।

१०—गृहस्थ लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् गृहस्थी के लिङ्ग में सिद्ध हुए।

११—स्त्री लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् स्त्री लिङ्ग में सिद्ध हुए।

१२—पुरुष लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् पुरुष लिङ्ग में सिद्ध हुए।

१३—नपुंसक लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् कृतनपुंसक लिङ्ग में सिद्ध हुए।

१४—एक सिद्धा, अर्थात् एक समय में एक ही सिद्ध हुए।

१५—अनेक सिद्धा, अर्थात् एक समय में अनेक सिद्ध हुए।

उपरोक्त पन्द्रह प्रकार सिद्ध हुए सो सर्व ज्ञान दर्शन चारित्र और तप यह च्यारों सहित हुए हैं परन्तु इन च्यारों के विना कोई भी सिद्ध नहीं हुए न होय और न होवेगा. ज्ञान से सर्व पदार्थों का ज्ञान होता है, दर्शन से सर्व पदार्थों का द्रव्य गुण पर्याय यथातथ्य श्रद्धता है, चारित्र से कर्म को रोकता और तप से, कर्मों का क्षय करता है इसलिये यह च्यारों मोक्ष मार्ग हैं, पन्द्रह प्रकार से सिद्ध होते हैं उन सब की करणी एकसी है और सिद्ध स्थान में सर्व सिद्धों के एकसा ज्ञानादि गुण तथा आत्मिक सुख एक सा है वहां किञ्चित् भी फर्क नहीं है, यह नवमा मोक्ष पदार्थ को ओलखने के लिये स्वामी श्री भीखनजीने नाथद्वारा शहर में सम्वत् १८५६ मिती चैत सुदि ४ शनिवार को ढाल जोड़ी जिसका भावार्थ मैंने किया जिसमें कोई अशुद्धार्थ आया होय उसका मुझे वारंवार मिच्छामि दुक्कड़ं है।

॥ कलश ॥

॥ चाल त्रोटक छन्द ॥

कह्यो जीव धुर अरु दूसरो, अजीव तत्व सुजान ही। पुण्य तीसरो फुन पाप चौथो आस्रव पंचमं मानही, छट्ठो पदारथ निरजरा अने सातमूं संवर ग्रह्यो ॥ आठमूं छै बंध फुन जे, मोक्ष ते नवमूं कह्यो ॥१॥ ए नव पदार्थ जे आखिया, जिन भाषिया आगम मही। तसु ढाल बंध सुं जोड़ नीको, स्वामश्री भिक्षु कही ॥ तेहनु भावार्थ मैं कियो, निज बुद्धि के अनुसार ही। वच विरुद्ध को आयो हुवै, तसु मिथ्या दुकृत धारहो ॥ २ ॥ स्वर व्यञ्जनादिक अने लघु, फुन दीर्घ जे मात्रा वही। कवि वांच के शुद्ध ग्रहण कर तसु हास्य मुझ करस्ये नहीं ॥ ए प्रार्थना है वाचकों से, नम्र भावे जानहो। गुनी आतम अर्थी तत्व समझी, यथातथ्य स् मानही ॥ ३ ॥ श्रीवीर शासन मांहि प्रगटे, स्वामी श्रीभिक्षु सही। जिन आण वर फुन वाणि शिरधर, विमल शिव मारग कही ॥ संसार पारावार तसु, उपकार सावद्य दाखियो। जे ज्ञान दरशन चारित तप ए, धर्म निरवद्य भाषियो ॥ ४ ॥ तसु पाट अष्टम स्वाम, कालूराम गणी महाराज ही।

सुरतरु सांचा मिष्ट बाचा, तरन तारन जहाजही ॥
तेहनु उपाशक गुलाब कहै, यह अर्थ तासु पसायही ।
कियो सम्बते उगनीस बहोतर, आनन्द हर्ष अथाय
ही ॥ ५ ॥

॥ उक्तंच ॥

नव सद्भाव पयत्था पणत्ता तंजहा जीव अजीवा
पुन्नं पावं आसवो संवरो निज्झरा बंधो मोक्खो ।

॥ इति ठाणाङ्ग सूत्रम् ॥

अर्थ नव सद्भाव अर्थात् छता पदार्थ प्ररूप्या ते कहै छे, जीवा १
अजीवा २ पुण्य ३ पाप ४ आस्रव ५ संवर ६ निर्जरा ७ बंध ८ मोक्ष ९

॥ अथ श्री अभयदेव सूरि कृता वृत्ति ॥

नवसद्भावे त्यादि । तद्भावेन परमार्थेना नुप-
चारेण त्यर्थः पदार्थाः वस्तूनि सद्भाव पदार्थाः
स्तद्यथा जीवाः सुख दुःख ज्ञानोपयोग लक्षणा,
अजीवा स्तद्विपरीताः पुण्यं शुभ प्रकृतिरूपं कर्म,
पापं तद्विपरीतं, कर्मैव आश्रूयते गृह्यते नेनेत्याश्रवः
शुभाशुभ कर्मादान हेतु रितिभावः, संवर आश्रव
निरोधो गुप्त्यादिभि, निरजरा विपाका त्तपसोवा
कर्म्मणां देशतः क्षपणा, बंध आश्रवै रात्तस्य कर्मण
आत्मना संयोगो, मोक्षः कृत्स्नकर्मक्षया दात्मनः

स्त्वात्मन्यवस्थानमिति; ननु जीवाजीव व्यतिरिक्तः
पुण्यादयो न संति तथा युज्य मानत्वा तथाहि
पुण्य पापे कर्मणी वन्धोपि तदात्मकएव कर्मच
पुद्गल परिणामः पुद्गलाश्चाजीवा इति आश्रवस्तु
मिथ्या दर्शनादिरूपः परिणामो जीवस्य सचात्मानं
पुद्गलांश्च विरहय्य कोन्यः संवरोप्याश्रव निरोध
लक्षणो देशसर्वभेद आत्मनः परिणामो निवृत्तिरूपो
निरजरातु कर्मपरिशाटो जीवः कर्मणां यत्पार्थक्य
मापादयति स्वशक्त्या मोक्षो प्यात्मा समस्त कर्म
विरहित इति तस्माज्जीवाजीवौ सद्भावपदार्थाविति-
वक्तव्य मतयेवोक्त मिहैव जद त्थिंचणं लोए तं
सव्वं दुप्पडयारं तंजहा जीवच्चेव अजीवच्चवत्ति अत्रो-
च्यते सत्यमेतत् किंतु यंवेव जीवाजीव पदार्थौ
सामान्येनोक्तौ तावेवेह विशेषतो नवधोक्तौ समान्य
विशेषात्म कत्वा द्वस्तुन स्तथेह मोक्षमार्गे शिष्यः
प्रवर्त्त नीयो न संग्रहा भिधान मात्रमेव कर्त्तव्यं सच
यदैव माख्यायते यदुता श्रवो वन्धो वन्धद्वारा यातेच
पुण्य पापे मुख्यानि तत्वानि संसार कारणा निसंवर
निर्ज रेच मोक्षस्य तदा संसार कारण त्यागे नेतरत्र
प्रवर्त्तते नान्यथे त्यतः षट्कोपन्यासः मुख्य साध्य
स्ख्यापनार्थश्च मोक्षस्येति, ।

॥ भावार्थ ॥

नव प्रकार के पदार्थ कहे सो परम अर्थ करके अन उपचार से सद्भाविक हैं अर्थात् कथन मात्र ही नहीं हैं छती वस्तु हैं सो कहते हैं जीव सुख दुःख का ज्ञाता उपयोग लक्षणी है १, अजीव सुख दुःख का अज्ञाता और अन उपयोग लक्षणी है २, पुन्य जीव के शुभ प्रकृति रूप कर्म है ३, पाप जीव के अशुभ प्रकृति रूप कर्म है ४, शुभाशुभ कर्मों का ग्रहण करने वाला आस्रव है ५, आस्रव का निरोध गुप्त्यादि संवर है ६, देशतः कर्मों को क्षय करे सो निरजरा है ७, आस्रव द्वार से कर्म प्रदेशा ग्रहण किये सो आत्म प्रदेशों के संयोग है अर्थात् आत्म प्रदेशों के कर्म प्रदेश बंधे है सो बंध हैं ८, और सर्व कर्मों को क्षय करके कर्म रहित आत्म प्रदेश है सो मोक्ष हैं ९, तब कोई तर्क करे तो फिर नव पदार्थ क्यों कहे जीव और अजीव ये दोही पदार्थ कहने थे क्योंकि पुण्य पाप हैं सो कर्म है आत्मा के साथ बंधे है ये तो पुद्गल परिणाम है और पुद्गल है सो अजीव है, तथा आस्रव है सो मिथ्या दर्शनादि रूप जीव परिणाम है सो आत्मा जीव द्रव्य है, आस्रव का निरोध अर्थात् निवृत्ति रूप है, सो संवर है सो भी जीव द्रव्य है, देशतः कर्म तोड़ के देशतः जीव उज्वल होय सो निरजरा भी जीव पदार्थ है तथा समस्त कर्मों को क्षय करके स्व शक्ति प्रगट करी कर्म रहित जीव होय सो मोक्ष है सो भी जीव पदार्थ ही है इसलिये जीव और अजीव ये दो ही सद्भाव पदार्थ है बाकी सातों को पदार्थ किस तरह कहे जिसका उत्तर शिष्यों को मोक्ष मार्ग में प्रवर्त्ताने के निमित्त पृथक पृथक पदार्थ बताये है, अनादि काल से संसारी जीव पुद्गलों के साथ लोलीभूत हो रहा है जो जीवके शुभ पणें उदय होते हैं उन पुद्गलों का नाम पुण्य पदार्थ है और जो अशुभ पणें उदय आते हैं उनका नाम पाप पदार्थ है पुण्य पाप का कर्त्ता जीव है जिसको आस्रव पदार्थ कहते हैं और अकर्त्ता है सो जीव संवर पदार्थ है, जीव

जब कर्मों को निर्जरता अर्थात् देशतः क्षय करता है इसलिये जीव का नाम निर्जरा है, और जो पुण्य पाप जीवके बंधे हैं उनका नाम बंध पदार्थ है, सम्पूर्ण पुण्य पाप को क्षय करके जीव कर्म रहित होता है उसका नाम मोक्ष पदार्थ है, तात्पर्य पुण्य पाप बंध और आस्रव यह संसार के कारण है इसलिये इन्हें तजके संवर निर्जरा जो मोक्षके कारण है सो अङ्गीकार करना चाहिये ।

॥ दोहा ॥

केई भेष धार्यां रा घट मझे । जीव अजीवरी खबर न कांय ॥ तो पिण गोला चलावै गालां तणा । ते पिण शुद्ध न दीसै तहाय ॥१॥ नव पदार्थां रो त्यांरै निर्णय नहीं । छ द्रव्यांरो पिण निर्णय नांहि ॥ न्याय निर्णय विना वकवो करै । त्यां रै सोच नहिं मन मांहि ॥ २ ॥ जीव अजीव दोनूं जिन कह्या । तीजी वस्तु न कांय ॥ जे जे वस्तु छै लोकमें । ते दोनूं में सर्व समाय ॥ ३ ॥ नव ही पदार्थ जिन कह्या । ते दोयां में घालै नांहि ॥ त्यां रै अंधकार घटमें घणों । ते भूल गया भ्रम मांहि ॥ ४ ॥ ऊंधी करैं छै प्ररूपना । ते भोला ने खबर न कांय ॥ तिण सूं नव पदार्थरो निरणय कहूं । ते सुणज्यो चित ल्याय ॥ ५ ॥

॥ ढाल ॥

आ अनुकम्पा जिन आज्ञा में ॥ एदेशी ॥

जीवते चेतन अजीव अचेतन। त्यांने वादर पणे तो ओलखणा सोहरा। त्यांरा भेद जुदा जुदा करतां। जब तो ओलखणा छै अति दोहरा॥ आ श्रद्धा श्री जिनवर भाषी ॥ १ ॥ जीव अजीव टालने सात पदार्थ। त्यांने जीवने अजीव श्रद्धे छै दोनूं हो॥ एहवी ऊंधी श्रद्धारा मूढ़ मित्थ्याती। त्यां साधूरो भेष ले आतम विगोई॥ जीव अजीव शुद्ध न श्रद्धे मित्थ्याती॥ २ ॥ पुण्य पाप बंध यह तीनूं ही कर्म। ते कर्म तो निश्चय पुद्गल जाणो॥ पुद्गल छै ते निश्चय अजीव। तिण मांहि शंका मूल म आणो॥ पुण्य पाप ने अजीव न श्रद्धे मित्थ्याती॥ ३ ॥ पुण्य पाप वेहुं ने ग्रहे छै आस्रव। पुण्य पाप ग्रह ते निश्चय जीव जाणो॥ निरवद्य जोगांसूं पुण्य ग्रहै छै। सावद्य जोगांसे पाप लागै छै आणो॥ आस्रवने जीव न श्रद्धे मित्थ्याती ॥ ५ ॥ कर्म आवानां द्वार आस्रव जीवरा भाव। तिण आस्रवरा बीसही बोल पिछाणो॥ ते बीसूंही बोल छै कर्मा'रा करता। ते कर्मा'रा करताने निश्चय जीव जाणो। आस्रव ॥६॥ आतमा वश करै तेहिज संवर। आतमा वश करै ते

निश्चय ही जीव ॥ तेतो उपशम क्षायक क्षयोपशम भाव । एतो जीवरा भाव छै निरमल अतीव ॥ संवर ने जीव न श्रद्धै मिथ्याती ॥ ७ ॥ आवता कर्मांने रोकै ते संवर । आवता कर्म रोकै ते निश्चय जीव ॥ तिण संवरने जीव न श्रद्धै मिथ्याती । तिणरै नरक निगोदरी लागै छै नींव ॥ संवर ॥ ८ ॥ देश थकी कर्मांने तोड़ै जव । देश थकी जीव उजलो होय ॥ जीव उजलो हुओ तेहिज निरजरा । निरजरा जीव छै तिणमें शङ्का न कोय ॥ निरजरा ने जीव न श्रद्धै मिथ्याती ॥ ६ ॥ कर्मांने तोड़ै ते निश्चय ही जीव । कर्म्म टूटां थकी उजलो हुओ जीव ॥ उजला जीवने निरजरा कहो जिनेश्वर । जीवरा गुण उज्वल है अतही अतीव । निरजरा ॥ १० ॥ समस्त कर्म थकी मुंकावे । ते कर्म रहित आतम छै मोख । इण संसार दुःखां थी छुटकारो पाम्यो । तेतो शीतली भूत थया निर्दोष ॥ मोक्ष ने जीव न श्रद्धै मिथ्याती ॥ ११ ॥ कर्म थको मुंकाणाते मोक्ष । ते मुक्ति ने कहिजे सिद्ध भगवान ॥ वलि मोक्षने परम पद निरवाण कहिजे । ते निश्चय ही निरमल जीव छै शुद्धमान । मोक्ष ॥ १२ ॥ पुण्य पाप बंध यह तीनूं अजीव । त्यांने जीव अजीव श्रद्धै छै दोनूं ही ॥ एहवी उंधी

श्रद्धारा छै मूढ़ मिथ्याती। त्यां साधूरो भेष ले आतम विगोई ॥ पुण्य पापने ॥ १३ ॥ आस्रव संबर निरजरा मोक्ष। यह नियमांही निश्चय जीव च्यारूं ही ॥ त्यांने जीव अजीव दोनूं श्रद्धै छै। तिण ऊंधी श्रद्धा ले आतम विगोई ॥ औ च्यारूं ही जीव न श्रद्धै मिथ्याती ॥ १४ ॥ नव पदार्थ में पांच जीव कह्या जिन। च्यार पदार्थ अजीव कह्या भगवान ॥ ए नवों ही पदार्थ नुं निरणय करसी। तेहिज समकित छै शुद्ध मान ॥ आ श्रद्धा श्रीजिनवर भाषी ॥ १५ ॥ जीव अजीव ओलखावन काजै। जोड़ कीधी पुर शहर मझारो। सम्बत् अठ्ठावन वर्ष सतावने। भादवा सुद पूनम बुद्धवारो ॥ नवही पदार्थ रो निर्णय कीजो ॥१६॥

॥ इति नवपदार्थ चौपाई सम्पूर्णम् ॥

॥ श्री जयाचार्य्य कृत ढाल ॥

प्रीत भिक्षु से लागी रे। सुमति सखरी मोय जागीरे ॥ लागो प्रीत भिक्षु थकीरे पछ्योरे गणोदधि-सीर ॥ तसु वचनामृत छांडि नै म्हारै कुण पीवै कड़वो नीर। प्रीत ॥१॥ ओलक्षी मानूं नहीं रे। नहीं मानूं भेषधार ॥ टालोकड़ से काम नहीं। म्हारे परम

पूज से प्यार ॥ प्रीत ॥ २ ॥ अन्त करण सहु दुःख तणो रे । समकित चरण सुआथ ॥ पूज प्रसादे पामियां आयो रत्न चिन्तामण हाथ ॥ प्रीत ॥ ३ ॥ ऊंडी तुझ आलोचनारे ॥ प्रबल प्रतापी आप ॥ जिन मग माग जमायवा कांई स्थिर मर्य्यादा स्थाप ॥ प्रीत ॥ ४ ॥ अष्टादश सोलै संयमीरे साठै वर्ष संथार ॥ आवै छै संत आरज्यां कह्या चरम वचन-चमत्कार । प्रीत ॥ ५ ॥ एक महुरतरै आसरै रे आया साधू दोय । दोय महुरतरै आसरै कांई तीन साध्वियां जोय । प्रीत ॥ ६ ॥ लोक वचन बहु इम कहै रे । आ अचरज वाली वात ॥ भादवा शुक्ल त्रयोदशी । कांई पण्डित मरण विख्यात । प्रीत ॥ ७ ॥ इति ॥

॥ अथ श्री कालूगणी स्तवना ॥

(देशी—दारू दाखांकी)

होजी म्हांरा दीन दयालु कालूगणी गुण दरिया हो । निरमल नीर वीर वचना करि गहरा भरिया हो । पाखंड डरिया हो । पाखंड डरिया हो एतो भवदधि कीच वीचमें पड़िया हो । कर्म अघ जड़िया हो ॥१॥ जे भवीधीर सीर शासनमें थारै शरणें तिरिया हो । पांच महाव्रत धार सार केई अणुव्रत धरिया हो । कारज

सरिया हो ॥ का ॥ ते तो शिव रमणी प्रते वरिया कै वरिया हो। कुगुरु बिसरिया हो ॥ २ ॥ टालोकड़ गुण सून्य हीन पुण्य गण बाहिर निसरिया हो। यह भव परभव में दुःख पामैं। ते सूंस बिसरिया हो। निरलज गरिया हो ॥ निर ॥ ये तो शिव मग सेती दूरा टरिया हो। कुगति में रड़ियां हो ॥ ३ ॥ तुम रींज हुमायु स्वच्छ पच्छ सम आशा पूरण स्वामी हो। सारण वारण संत सत्यांरी मेटण खामी हो। अन्तरयामी हो। अन्तर। ये तो विवध प्रकारे शास्त्रां ना गामी हो ॥ करण अमामो हो ॥ ४ ॥ सेवग जनपै कृपा करिके भव जल पार उतारो हो। भविजन रै मन आशा अधिकी कारज सारो हो। शीघ्र संभारो हो ॥ शीघ्र ॥ एतो गुलाबचन्द कहै। हर्ष अपारो हो। बिड़द तिहांरो हो ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ ढाल ॥

देशी—जागो म्हारा सिंह सूरमा रावतो रिसालु ॥ एचाल ॥

गणी थांरो मही बिच जश रह्यो छाय। जश रह्यो छाय अहो कालू गणी राय। ग। कीरति रिसाई जाई। मानूं राखी रहै नाहीं। भवीजन मन भाई ज्ञान बधाय ॥ गणी ॥ १ ॥ दीपै हद तनु द्युति। इन्दु से अधिक कूंती। सम दम खम युति तिमिर

न्हसाय ॥ गणी ॥ २ ॥ विविध मर्याद वाद । रहो ध्रुव मिष्ट साद । गुन गिरवो अगाध । सागर अथाय ॥ गणो ॥ ३ ॥ इति ॥

॥ ढाल राग खमाचमें ॥

गणो तोरा दरश सरस पर वारीजी ॥ ग ॥ कालू गणि राजा । भव दधि पाजा । गरीव निवाजा । जग जश जाभा जहारीजी ॥ ग ॥ १ ॥ अष्टम् पटधर अज्ञान तिमिर हर । विमल बुद्धिवर । ज्ञान वान सर सारीजो ॥ ग ॥ २ ॥ अनुत्तर खम दम । अतिशय जिन सम । निरुपम निर मम रम निज भाव विचारी जी ॥ ग ॥ ३ ॥ पटतोस गुन युत । क्रान्ति रवि वत् । अमृत वच सत । वाग्रत कुमति विडारीजो ॥ ग ॥४॥ हरण भ्रमण दुःख । करण वरण सुख । धरम परम मुख । गुलाव शरण तुझ धारोजी ॥ ग ॥ ५ ॥

॥ इति सम्पूर्णम् ॥